व्याख्यान सूची ।

समर्पण ।

श्री १०८मान् टिहिरीनरेश क्षत्रिय कुलरत्न महाराज श्रीकीर्तिसाह जी देव् वहादुर

महाराज ! आप जैसे अपनी प्रजाके हितार्थ रात्रिदिन राजकाज की ओर दत्तचित्त रहते हैं तैसे ही आपका विद्याप्रेम और धर्मप्रेम भी अनुकरणीय है, अतएव यह धर्मान्दोलनरूप धर्म विषयक व्याख्यानोंकी पुस्तक आपको समर्पण करता हूँ, आशा है आप इसलघु उपहार को स्वीकार कर मुझे कृतार्थ करेंगे ।

निवेदक–रामस्वरूप शर्मा
मुरादाबाद.

भूमिका ।

—•—

अन्दाजन ६ वर्ष हुए कि–श्रीस्वामीहंसस्वरूप जी महाराज ने इस नगर मुरादाबाद में आकर लखनऊवाले शाहजी की कोठी और साहू बा० भूषणशरणसाहब की कोठी पर अपने व्याख्यानामृत से नगरनिवासियों को तृप्त किया या व्याख्यानोंके परमचित्ताकर्षक होनेके कारण हम बराबर नोट करते रहे थे, परन्तु ऐसा सुभीता नहीं हुआ कि–हम सब व्याख्यानों को अविकल लिखकर धार्मिक महाशयोंको उपहार में देसकें; अब सन् १९०० के समय बडोदे में रायबहादुर कृष्णरावविनायक शार्ङ्गपाणी जज्ज बडोदाकोर्ट क परिश्रम से स्वामीजी के व्याख्यान होनेपर तहाँ के वे. शा. रा. रा. भास्करशास्त्री जोशी और रा. रा. दत्तात्रय रावजी पळशीकरने परिश्रम करके व्याख्यानों को यथावत् लिखा और बडोदे के दामोदर सांवलारामचंदे ने मराठी भाषा में छपवाया, उस की सहायता से हमने पूर्व सुनेहुए सब व्याख्यनों को ठीक करके तथा उक्तस्वामीजी के जीवनचरित औ नोटोंका उक्त मराठी पुस्तक से अनुवाद करके हिन्दी भाष और धर्म के प्रेमी, सनातनधर्मपताका के ग्राहकोंके लिये लिखा और रामपूर राज्यनिवासी प० मिश्रीलाल शर्मा ने छपवाया है, आशा है इस पुस्तक से उक्त स्वामीजी आनन्दित होंगे और धार्मिक महाशय पढकर लाभ उठावेंगे ।

सम्वत् १९६० कार्त्तिक

निवेदक–रामस्वरूप शर्मा
मुरादाबाद. यू. पी.

श्रीमान् स्वामी हंसस्वरूपजी महात्मा का
संक्षिप्त-जीवन-चरित ।

परोपकाराय सतां विभूतयः ।

अपने चारों ओर को दृष्टि डालने पर, हरएक मनुष्य स्वार्थसाधन में तत्पर देखने में आवेगा । जिनको स्वार्थ की कुछ पर्वाह नहीं है और जिन्होंने अपना तन-मन-धन केवल लोकों के कल्याण के लिये ही लगाया है ऐसे कोई विरले ही पुरुष होते है और उनको जगत्भर परमपूजनीय समझता है, ऐसे ही महात्माओं में स्वामी हंसस्वरूपजी हैं, इसकारण पम उनका संक्षिप्त चरित्र पाठकों के अर्पण करते हैं ।

भारतवर्ष के उत्तरीय विहारप्रान्त में जनकपुर के समीप एक रिगा नामक ग्राम है । उसग्राम में बलदेवनारायण शर्म्मा नामक गौड़ब्राह्मणजाति के एक तालुकेदार ब्राह्मण रहते थे और उनकी स्त्री का नाम रामदेनीदेवी था । उसग्राम में यह कुटुम्ब खापीकर उत्तम सुखसे रहता था और जमीन, घरद्वार, बैलढोर आदि गृहस्थाश्रम के योग्य सब सामग्री उनके पास थी । रामदेनी देवी स्वभाव से ही परमशान्त होकर पतिसेवा और ईश्वरभक्ति में निरन्तर निमग्न रहती थी, यही परम साध्वी श्री श्रीस्वामी हंसस्वरूपजी की माताथी, रामदेनीदेवी इन सुपुत्र को उत्पन्न करने के अनन्तर शीघ्र ही परलोक को सिधारगई । तदनन्तर थोड़े ही दिनो में स्वामीजी के पिता बलदेवनारायणजी भी स्वर्गवासी होगये । इसप्रकार बालकपन में ही माता पिता के परलोकगामी होने के कारण स्वामीजीका पालनपोषण समीप के गुरुजन करने लगे । उन्होने स्वामीजी के पढ़ने के धनका सुप्रबन्ध करके स्वामीजीको उत्तम शिक्षादेनेका प्रबन्ध करदिया बालकपनसेही स्वामीजीका चित्त परमार्थ की ओर को लगाहुआ था । वह प्रेम बढते २ ऐसा बढगया

हे प्रियसभासदों! मैं आप के सन्मुख जिस गहन और महान् विषयपर व्याख्यान देनेवाला हूँ, उस विषय में प्रवेश करने के लिये मैं, आज केवल भूमिकामात्र धर्म-सम्बन्धी कई प्रकरणों को लेकर उनही के विषय में संक्षेपके साथ कुछ कहूँगा।

इस सभारूपी बगीचीमें जनसमूहरूप मिन्नर सुगन्धित पुष्पलताओंपर विहार करनेवाले सुखरूपी पक्षीका मनोहर शब्द सुनकर मनोरूप माली प्रेमाश्रुओंसे सींचरहाहै ऐसीदशा देखकरमैं भी हरिनामरूप जल को छिड़ककर उस बगीची को अधिक प्रफुल्लित करनेका उद्योग करता हूँ–एकवार भक्ति के साथ कहो–

हरे राम हरे राम, राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण, कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

पहिले इस आर्यावर्त में सनातनधर्म सबप्रकार से जागरहा था, तब लोग बड़े धर्मात्मा और निष्ठावान् थे, अधर्म को प्रवेश करनेका किंचिन्मात्रभी अवसर नहीं मिलता था। उस समय युधिष्ठिर नल मान्धाता दिलीप आदि धार्मिक शिरोमणि राजे प्रजापालन में तत्पर रहते थे और वशिष्ठ वामदेव आदि महर्षि भी धर्मको जागृत रखने में और उसकी वृद्धि करने में रातदिन तत्पर रहते थे। जैसे किले में के राजमहल की उत्तमता से रचना कीजाती है तैसेही सनातनधर्मरूपी महल, उपरोक्त धर्मात्मा राजे और महर्षि आदिकों से सुरक्षित था। परन्तु वह दशा उलटकर कालवश क्षय होतेर इस समय किसी अतिजीर्ण महलकी समान उस धर्मरूप महलकी दुर्दशा होरही है कहींर पुरानी गिरी पड़ी दीवारें रहगई हैं। यदि कहो कि–वह दीवारें कौनसी हैं? तो सुनिये हमारे पवित्र और विद्वत्तासे भरेहुए दिव्यग्रन्थ धर्मग्रन्थ हैं। हमारा प्राचीन पुस्तकोंका भण्डार इतना बड़ा था कि–औरङ्गजेब बादशाह ने हमारे ग्रन्थभण्डार को जलाने की आज्ञा दी तो छःमासतक बराबर ग्रन्थों के जलते रहनेपर

भी वह निवड़ा नहीं, अन्त में जो ग्रन्थ बचगये उनका बहुमूल्यपना इतना है कि--वह जगत्भर के अन्यमनुष्यों के ग्रन्थों को और विद्याओं को अब भी नीचाही दिखावेगा। नवीन फिलॉसफर (तत्त्वज्ञानी) भी उन ग्रंथों में की एक पंक्तिको बांचकर चकित होजाते हैं और 'हमारी बुद्धि काम नहीं देती' ऐसा स्पष्ट कहदेते हैं, अस्तु; यह जो हीनदशा प्राप्तहुई है यह हमारे धर्म का बुढापाहै। जैसे मनुष्यको बालकपन, तरुणाई और बुढापा बीताहै तैसे ही धर्म के विषय में भी समझना चाहिये, तिसपर कलियुग- महाराजकी अमलदारी !! जिसप्रकार बुढापे में मनुष्य की गर्दन काँपने लगती है, तैसे ही इसधर्मकी भी गर्दन काँपनेलगी है, अर्थात् यदि कोई हमसे पूछे कि--ब्रह्मचर्य कैसी क्या वस्तु है ? तो ऊँहः (नहीं) सूचित करने के लिये गर्दन हिलने लगती है। सत्य नहीं, धैर्य नहीं, क्षमा नहीं, अहिंसा-नही, इन सबही शब्दों के साथ गर्दन हिलाईजाती है; यही धर्म के बुढापे का चिन्ह है परन्तु ऐसी दशा होजाने के वास्तविक कौनर कारण हैं, यह खोज करना हमारा कर्त्तव्य है। यद्यपि उन सब कारणों के वर्णन में बहुत समय लगेगा परन्तु सबसे बड़ा कारण संस्कृत की अवनति है। संस्कृत ही हमारे धर्मग्रन्थों और अनेकों शास्त्रों की उत्तमतम की भाषा है तथा जगत्भर की सभी भाषाएँ इसके ही शब्दोंका उच्चारण विगडतेर बनगई हैं, ऐसा कहना कोई अनुचित बात नहींहै। उदाहरण के लिये कुछ शब्द कहते हैं, उनसे इसबात का निश्चय होजायगा।

संस्कृत....	लॉटिन....	अंगरेजी....	पर्शियेन....	जर्मन्....	ग्रीक
मातृ	मेटर्	मदर्	मादर्	मातेर्	मातेर्
पितृ	पेटर्	फादर	पिदर्	पातेर्	पिटर

इसीप्रकार——

संस्कृत....	लॉटिन....	अंग्रेजी....	पर्शियन्
सुवन	सन्	सन	....

संस्कृत....अरबी
अंकबर—अकबर

कि–सत्तरह अठारह वर्षकी अवस्था होतेही इनको वैराग्य होगया,तब यह घरद्वार आदि सम्पदा और इष्टमित्रों को त्यागकर ब्रह्मविद्या की प्राप्ति के लिये सिद्ध पुरुषों को खोजतेहुए.वन, पर्वत और नदियों के तटों में विचरनेलगे, इनके सम्बन्धी पुरुष इनको तीन चार बार घरलाये और गृहस्थाश्रमको स्वीकार करने के लिये तथा सम्पत्ति को भोगने के लिये अनेकों प्रकार से समझाया परन्तु इनके चित्तपर एक बातभी नहीं जमी। स्वामीजी के चित्तपर ब्रह्मविद्या का ऐसा पूर्ण प्रभाव पड़ा था कि–उसको पाने के लिये उनका सिद्ध पुरुषों को खोजने का काम एकसमान चलतारहा। पूर्ण उद्योग करने से दुर्लभ वस्तुभी मिलजाती है। इस सिद्धान्त के अनुसार जब स्वामीजी मुक्तिनाथ को गये तब तहाँ श्रीमान् स्वामी इन्द्रस्वरूपजी से समागम हुआ तहाँही इनका पूर्वाश्र पूर्णहुआ और उन्हीके समीप रहकर इन्होने ब्रह्मविद्या और योगाभ्यास का ज्ञानपाया, इसप्रकार इच्छित वस्तु की प्राप्ति होनेपर स्वामीजी को परम प्रसन्नता प्राप्त हुई। फिर सन् १८८७ में स्वामीजी नेपालको चलेगये१ तहाँ बाबा इन्द्रदास, चैतन्यदास, स्वामीमुक्तानन्द, बाबा ब्रह्मदास, बाबा बालखण्डी और गोरखनाथ के कितनेही शिष्योंसे परिचय हुआ और सबोंने सम्मति करके सनातन वैदिकधर्म की उन्नतिकरने का विचार किया तथा सबोंने थोड़े २ कार्यका भार बाँट लिया। उसमें श्रीमान् स्वामी हंसस्वरूपजी को इस देशमें धर्मप्रचार करने का काम सौंपागया।

इसप्रकार धर्मप्रचार के महान् कार्यको स्वीकार करके स्वामीजी महाराज भ्रमण करने को निकले सन् १८८७ के प्रसिद्ध मासमें सिंधिदाप्रान्त के कमतोल ग्राममें आपहुँचे और तहाँ "धागतनिकुटी महद्ध सदरसभा" (अर्थात् सनातनधर्मोपदेशक मण्डली) स्थापन करी. अपने मधुर, अस्खलित, रसभीने व्याख्यानों से लोकों के चित्तोंपर सनातनधर्म का ऐसा प्रभाव जमाया कि–गरीब से लेकर

श्रीमान् पर्यन्त उस नगर के सबलोग अपने अनादिसिद्ध वैदिकधर्म में मग्न होकर उक्तसभा के मैंबर बनगये । पहिलेही अवसर में धर्माङ्कुर जमाकर स्वामीजी काशी, प्रयाग, मथुरा, वृन्दावन, अयोध्या, कानपूर, लखनऊ, मुरादाबाद, बरेली, आरा, छपरा, पटना आदि नगरों में गये और तहाँ सनातनधर्म विषयक व्याख्यान देकर सहस्रों नास्तिकों को पुनर्वार सत्य सनातनधर्मपर श्रद्धालु बनाया ।

सन् १८८८ में दरभंगा पहुँचे और तहाँ के श्रीमहाराज से मिलकर अपना सब मानस सुनाया, तब उन्होने इस महान् कार्य की शाखा अपने राज्यमें स्थापन करने के लिये कमतौल में स्थान दिया, तहाँ स्वामीजीने सभा स्थापन करी, परन्तु फिर लोकों के सुभीते तथा अन्य व्यवस्था करने के लिये इस स्थान से सभाको उठाकर मुजफ्फरपूर में स्थापित किया, फिर कुछ दिनो में उस स्थानसेभी बदलकर बाँकीपूर पटने में लेआये और आजकल तहाँही है। तथा सर्वत्र धर्मप्रचार करने के लिये स्वामीजीका उद्योग बराबर चलारहा है । इसप्रकार स्वामीजी का जितना चारित्र हमको मिल वह पाठकों को अर्पण किया है, स्वामीजी का पूर्वाश्रम का नाम विदित नहीं हुआ अतः आश्रम के नाम सेही निर्वाह करके यह संक्षिप्त जीवनचरित लिखा है ।

श्रीहरिः शरणम्

प्रसिद्धवक्ता-स्वामी-हंसस्वरूपजी-महात्माकी

व्याख्यानमाला

व्याख्यान १

विषय-सनातनधर्म की महिमा

हे नाथ शरणं देहि मां भक्तं शरणागतम् । सर्वाद्य सर्वनिलय सर्वबीज सनातन ॥
सर्वाधार निराधार साक्षिभूत परात्पर । दुष्पारापारसंसारकर्णधार नमोऽस्तुते ॥

हे प्रियसभासदों! मैं आप के सन्मुख जिस गहन और महान् विषयपर व्याख्यान देनेवाला हूँ, उस विषय में प्रवेश करने के लिये मैं, आज केवल भूमिकामात्र धर्म-सम्बन्धी कई प्रकरणों को लेकर उनही के विषय में संक्षेपके साथ कुछ कहूँगा।

इस सभारूपी बगीचीमें जनसमूहरूप भिन्न२सुगन्धित पुष्पलताओंपर विहार करनेवाले मुखरूपी पक्षीका मनोहर शब्द सुनकर मनोरूप माली प्रेमाश्रुओंसे सींचरहाहै ऐसादेखकरमैं भी हरिनामरूप जल को छिड़ककर उस बगीची को अधिक प्रफुल्लित करनेका उद्योग करता हूँ—एकवार भक्ति के साथ कहो—

हरे राम हरे राम, राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण, कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

पहिले इस आर्यावर्त में सनातनधर्म सवप्रकार से जागरहा था, सब लोग बड़े धर्मात्मा और निष्ठावान् थे, अधर्म को प्रवेश करनेका किंचिन्मात्रभी अवसर नहीं मिलता था। उस समय युधिष्ठिर नल मान्धाता दिलीप आदि धार्मिक शिरोमणि राजे प्रजापालन में तत्पर रहते थे और वसिष्ठ वामदेव आदि महर्षि भी धर्मको जागृत रखने में और उसकी वृद्धि करने में रातदिन तत्पर रहते थे। जैसे किले में के राजमहल की उत्तमता से दृढता की शोभाती है तैसेही सनातनधर्मरूपी महल, उपरोक्त धर्मात्मा राजे और महर्षि आदिकों से सुरक्षित था। परन्तु वह दशा उलटकर कालवश क्षय होते२ इस समय किसी अतिजीर्ण महलकी समान उस धर्मरूप महलकी दुर्दशा होरही है कहीं२ पुरानी गिरी पड़ी दीवारें रहगई हैं। यदि कहो कि—वह दीवारें कौनसी हैं? तो सुनिये हमारे पवित्र और विद्वत्तासे भरेहुए बचेखुचे धर्मग्रन्थ हैं। हमारा प्राचीन पुस्तकोंका भण्डार इतना बलिष्ठ था कि—औरङ्गजेब बादशाह ने हमारे ग्रन्थभण्डार को जलादेने की आज्ञा दी तो छ मासतक बराबर ग्रन्थों के जलते रहनेपर—

भी वह निबडा नहीं, अन्त में जो ग्रन्थ बचगये उनका बहुमूल्यपना इतना है कि--वह जगत्भर के अन्यमनुष्यों के ग्रंथों को और विद्याओं को अब भी नीचाही दिखावेगा । नवीन फिलॉसफर (तत्त्वज्ञानी) भी उन ग्रंथों में की एक पंक्तिको बांचकर चकित होजाते हैं और 'हमारी बुद्धि काम नहीं देती' ऐसा स्पष्ट कहदेते हैं, अस्तु; यह जो हीनदशा प्राप्तहुई है यह हमारे धर्म का बुढ़ापाहै । जैसे मनुष्यको बालकपन, तरुणाई और बुढ़ापा आताहै तैसे ही धर्म के विषय में भी समझना चाहिये, तिसपर कलियुग महाराजकी अमलदारी !! जिसप्रकार बुढापे में मनुष्य की गर्दन काँपने लगती है, तैसे ही इसधर्मकी भी गर्दन काँपनेलगी है, अर्थात् यदि कोई हमसे बूझे कि–ब्रह्मचर्य कैसी क्या वस्तु है ? तो अँहः (नहीं) सूचित करने के लिये गर्दन हिलने लगती है । सत्य नहीं, धैर्य नहीं, क्षमा नहीं, अहिंसा-नहीं, इन सबही शब्दों के साथ गर्दन हिलाईजाती है; यही धर्म के बुढापे का चिन्ह है परन्तु ऐसी दशा होजाने के वास्तविक कौन२ कारण हैं, यह खोज करना हमारा कर्त्तव्य है । यद्यपि उन सब कारणों के वर्णन में बहुत समय लगेगा परन्तु सबसे बडा कारण संस्कृत की अवनति है । संस्कृत ही हमारे धर्मग्रन्थों और अनेकों शास्त्रों की उससमय की भाषा है तथा जगत्भर की सभी भाषाएँ इसके ही शब्दोंका उच्चारण बिगडते२ बनगई है, ऐसा कहना कोई अनुचित बात नहींहै । उदाहरण के लिये कुछ शब्द कहते हैं, उनसे इसबात का निश्चय होजायगा ।

संस्कृत....	लॉटिन....	अंगरेजी....	पर्शियन....	जर्मन्....	ग्रीक
मातृ	मेटर्	मदर्	मादर्	मातेर्	मातेर्
पितृ	पेटर्	फादर	पिदर्	पातेर्	पिटर्

इसीप्रकार——

संस्कृत....	लॉटिन....	अंग्रजी....	पर्शियन्
सुवन	सन्	सन	....
दुहितृ	....	डॉटर	दुखतर

संस्कृत....अरबी
अंकवर—अकबर
अंतकाल-इंतकाल

इसीप्रकार——

संस्कृत....	अंग्रेजी	संस्कृत....	पर्शियन्
सर्प	सर्पेंट्	अस्ति	अस्त
पथ	पाथ	नास्ति	नेस्त
त्रिपथ	ट्रायपेड्	किमस्ति	कीस्ती

इसीप्रकार और भी अनेकों शब्दों की समता दिखाई जासकती है। परन्तु उतना अवकाश न होने से आगे को चलते हैं।

ऐसे सूक्ष्मरीतिसे देखने पर जगत्भर की सकल भाषाओं की जननी निःसन्देह यह संस्कृत ही है। मूलस्थान भारतवर्ष से उसका प्रचार जैसे २ दूरदेशों में होतागया तैसे २ उसका अपभ्रंश होकर उसके द्वारा और लोगों की भाषा बनतीगई, यह दशा होतेहुए भी जिनको इस संस्कृत की गन्ध भी नहीं मिली है वह इसको डेड् लैंगवेज (मृतभाषा) और मूर्ख लोगों की भाषा है ऐसा कहते हैं और इस में ऐसे ही विचार भरे होंगे"इसप्रकारकहकर तिरस्कार करतेहैं। संस्कृत सीखना मानो भीख मागने की विद्या सीखना है, वहतो दरिद्री मिखमँगों को पढनी चाहिये, हमको उस से क्या लाभ है? ऐसी वृथा बकवाद करते हैं।-परन्तु रत्न के मोल को कुँजड़ा क्या जाने? मित्रों! केवल शब्दों की समताही नहीं है,किन्तु अनेकों नये शास्त्र भी इस संस्कृत से ही लिये गये हैं, यह बात ग्रन्थों से और व्यवहार से स्पष्ट समझ में आजायगी"। सूर्य की उष्णतासे पानी की भाफ बनकर उस के मेघ होकर फिर वर्षा होती है यह खोज नवीन नहीं है, किन्तु उपनिषद् में कहा है।

'आदित्याज्जायते वृष्टिर्वृष्टेरन्न ततः प्रजा।'

जिस विद्युत्शास्त्र ने आजकल सबजगत् को चकित करडाला है, उसका प्रचार पहिले हमारी ओर ही था,यह बात एकछोटेसे उदाहरण से आप समझलेंगे। उत्तर हिन्दुस्तान में जब बरसात आतीहै तब

बादलों में बिजली चमकने लगती हैं तब साधारण दासी भी आँगन में पड़ेहुए काँसी आदि धातु के पात्रों को शीघ्रता से उठाकर घर में को लेजाती है। धातु में बिजली गिरकर घुसजाती है यह बात हमारे यहाँ की तुच्छ दासियों को भी मालूम है, तात्पर्य यह है कि—नयी चलाई हुई मालूम होनेवाली अनेकों विद्याएँ पहिले हमारे पासथीं;परन्तु अब पूर्वोक्त कारण से ग्रन्थों का नाश होजाने पर वह सब स्वप्न की समान होरही हैं।

जैसे ग्रन्थों की और संस्कृत की ऐसी अधोगति होगई तैसे ही-हमारी गुरुशिष्य प्रणाली भी बिगडगई है। आजकल अधिक तो क्या; बहुत से गुरुनामधारी भी इसबात को नहीं जानते कि—सन्ध्या प्राणायाम आदि शास्त्रानुकूल किसरीति से करने चाहियें बस केवल नाक कान को हाथ लगाया सो प्राणायाम होगया !! जब गुरुओं की यह दशा है तो शिष्यों की तो बात ही क्या ? हाँ कभी कहीं सच्चे गुरु मिलभी जातेहैं,परन्तु दिनोदिन गृहस्थों की श्रद्धा घटती जाने के कारण उनसे भी दोनों को कुछ लाभ नहीं पहुँचता। उत्सव त्योहार आदि के समय किसी वेश्या का, आने के विषय में तार आया कि—कोई गाडी भेजता है, कोई सेवक भेजता है और आज्ञा-लेपर अंजीर, अंगूर, अनार, सन्तरे, केला, आम, पकवान आदिकी तश्तरियें नजर करके बार २ प्रश्न किया जाता है कि—कहिये सर-कार आपकी तबियत कैसी है ?। और उन ही के पास कहीं से यदि गुरुवर्यका आने के विषय में तार या पत्र आवे तो सब नाक सको-डने लगते हैं। यदि गुरु महाराज आही जायँ तो उन को किसी घु-डसाल, गोशाला या कबूतरखाने में ठहरादेते हैं और कहीं से आये हुए सडेगडे फल अर्पण करदेते हैं यदि गुरुजी ने बूझातो कहदिया कि—महाराज आपतो परमहंस हैं आपको भला बुरा क्या !। जहाँ ऐसी दशा हो तहाँ धार्मिक उन्नति की क्या आशा ?।

ऐसी दशा होतेहुए भी हम हिन्दुओं की स्त्रियों में अब भी धर्मका अंश अधिक है, यद्यपि आजकल के नवशिक्षित लोग हिन्दुओं के घरों की लक्ष्मीस्वरूपिणी ऐसी स्त्रियोंको अज्ञान में पड़ीहुई समझतेहैं परन्तु सनातनधर्म के मत से यह अज्ञान नहीं है उदाहरण देखिये, एक हिन्दु नारी प्रातःकाल के समय उठकर पति की सेवा करके पति की आज्ञानुसार गङ्गातटपर स्नान करने को जाती है, स्नान के अनन्तर श्रीगङ्गाका पूजन करके सिन्दूर, अगर, कुंकुम को गङ्गाका प्रसाद जानकर अपने माथ में लगाय उस को सौभाग्य दर्शक चिन्ह समझती है। तदनन्तर पीपल के वृक्ष में सिन्दूर की बिंदी लगाकर आम के वृक्षपर टीका काढती है, फिर चलते २ गौ मिलती है तो उस के सिन्दूर का टीका लगाती है, तदनन्तर खेत में हल से खुदेहुए ढेले के टीका लगाती हैं, जहाँ चौराहा होता है तहाँ सिन्दूर चढाती है, तदनन्तर अपने घर आकर कोठों पर और दीपक रखने के स्थानपर तथा पलङ्गपर टीका लगाती है, जरा विचारकर देखो इन सब वस्तुओं पर टीका लगाने का प्रयोजन क्या है? सनातनधर्म का जो रहस्य है कि–ब्रह्म सर्वत्र समभाव से प्राप्त है, यही स्त्रियों के उस कार्य से दिखायागया है; इतना ही नहीं किन्तु सिन्दूर, अगर कुंकुम यह स्वामी के विद्यमान होने के चिन्ह हैं, तिसीप्रकार जगत् भरका स्वामी इन सब काठ पाषाण आदि वस्तुओं में ओतप्रोत भर-रहा है, ऐसा जो।

१ सर्वं खल्विदं ब्रह्म इत्यादि। २ ईशावास्यमिदं सर्वं यत् किंचित्। ३ तत्सृष्ट्वा तदेवानुप्र विशत्।

इत्यादि श्रुतियों का मथकर निकाला हुआ अर्थ है, उस को हिन्दु स्त्रियें भिन्न २ वस्तुओं पर कुंकुम का टीका लगाकर प्रकट करती हैं।

ऐसा उपदेश और तदनुसार आचरण इन दोनों पर अमल केवल सनातनधर्म में ही देखा गया है इसकारण यह अन्य सब धर्मों की

अपेक्षा श्रेष्ठ है। सनातनधर्म में वृक्ष पशु आदिकों की पूजा कही है उसको बहुत से भिन्नधर्मी मूर्खता बताते हैं, परन्तु ऐसा कहनेवालों ने सनातनधर्म का रहस्य कुछ भी नहीं समझा है, वृक्ष पशु आदि की पूजा करना मूर्खता नहीं है किन्तु सनातनधर्म का महत्त्व दिखाने वाला उदाहरण है। क्योंकि देखो—दूध, दही, माखन, मलाई आदि से बालकों से लेकर बूढ़ों पर्यन्त का अत्यन्त उपकार करनेवाली परममित्र गौ की पूजा करने के लिये जैसी सनातनधर्म में आज्ञा है तैसे ही प्राणघातक परमशत्रु सर्प की भी श्रावणशुक्ला पञ्चमी को पूजा करने की आज्ञा दी है। इसप्रकार 'समः शत्रौ च मित्रे च' इस उच्च तत्त्व का केवल उपदेश ही नहीं किया है, किन्तु तदनुसार प्रत्यक्ष आचरण भी सनातनधर्म ने दिखाया है। ऐसे उदार उपदेश और आचरण का फोटो क्या और किसी धर्म में ढूँढने से भी मिल-सकता है? कदापि नहीं। इससे सनातनधर्म की योग्यता, व्यापकता और महत्ता को सब सहज में ही समझसकते हैं। ईश्वर सर्वत्र व्यापक है, इसका यथार्थ विचार जिसमें है ऐसा एक सनातनधर्म ही है; इसको अन्यधर्मी लोग तथा हम में के सुधारक चाहे जो कुछ कहें परन्तु ईश्वर की यथार्थ व्यापकता के रहस्य को एक-सनातन-धर्मियों ने ही समझा है।

हमारे अठारह पुराण हैं और वह मानो पृथ्वीपर के प्रत्यक्ष प्रमाणों की समान ही १८ प्रत्यक्ष-प्रमाण है, वह किसी विशेष कारण से सत्तरह या उन्नीस नहीं रचेगये हैं, इसबात को हम और किसी समय विस्तार के साथ कहेंगे।

सनातनधर्म में भक्ति को परम तत्त्व माना है, परन्तु गुरुशिष्य भाव की प्रणाली बिगड़जाने के विषय में मैं आप से पहिले ही कह-चुका हूँ। उस के बिगड़ने से जैसा योगमार्ग का लोप हुआ है तैसा ही भक्तिमार्ग का भी लोप होगया। गुरु की कृपा से और सत्समा-

गम से ईश्वर की ओरको लौ लगकर भक्तिरस का द्वार कैसा सुल जाता है और फिर अनन्यभक्ति करने लगने पर, सङ्कट के समय श्यामसुन्दर प्रभु अपना दर्शन देकर कैसी सहायता करते हैं इस विषय में उदाहरणरूप परमभक्तशिरोमणि तुलसीदासजी का चरित्र संक्षेप से कहता हूँ।

तुलसीदासजी का निवासस्थान बाँदा जिले के राजापूर ग्राम मे था और इन के पिता उवर के तहसीलदारी के कामपर थे और उन्होंने बहुतसा धनसञ्चय करा था। इन की माता का नाम तुलसी था, दुर्दैववश तुलसीदासजी के पिता इनको सात आठवर्षका बालक ही छोडकर परलोक को सिधारगये। इकलौता पुत्र और लाडला होने के कारण १५। १६ वर्ष की अवस्थातक यह निरक्षर ही रहे, तदनन्तर एक श्रेष्ठ कुलकी कन्या के साथ इनका विवाह होगया। स्त्री के परमरूपवती होने के कारण तुलसीदासजी का ध्यान रातदिन उसी को ही लगा रहता था। आठों प्रहर उस के पाससे हिलने भी नहीं थे, पिताका इकट्ठा कराहुआ धन खर्च होगया, सोना लुटा होतो जठ का होना कबतक भरा रहसकता है। तुलसीदासजी के ऐसे स्त्री में आसक्त होने के कारण उन की माताको बडा खेद हुआ और पुत्र को व्यापार धंधा, नौकरी चाकरी आदि करने के लिये बहुत कुछ समझाया, परन्तु तुलसीदासजी के ध्यान में एक भी बात नहीं आई और उलटा यह उत्तर दिया कि–तुही हम दोनों का पालनकर, ऐसा उत्तर सुनकर, माता चित्त में दुःखित होती हुई मौन हो बैठी। पाँच छ वर्ष ऐसे ही बीत गनेपर बहूको लिवाने के लिये उस के पीहर से मनुष्य आये, उनको तुलसीदासजी ने निषेध करके लौटादिया और स्पष्ट उत्तर दे दिया कि–मैं अपनी स्त्री को नहीं भेजूंगा, इसपरउन की माता ने कहा कि–प्रातःकाल के समय तुलसीदास एक घंटे तक स्नान आदि नित्य क्रिया करने को यमुनाजी के तटपर जाया

करता है उससमय तुम टोला लेआना, मैं बहू की विदा करदूँगी। दूसरे दिन जब तुलसीदास स्नान आदि करने के लिये यमुनाजी को चलेगये, उसी समय उनकी माताके कहने के अनुसार तुलसीदास की मुसरालवाले आकर बहूको लिवालेगये। इधर तुलसीदासजी स्नान आदि से निवटकर कंधेपर धुलीहुई धोती, हाथ में जलकी झारी और एक पीताम्बर पहिनेहुए आये, सो पहिले तो उन्होंने घर में सर्वत्र देखा, परन्तु जब स्त्री घरमें कहीं न दीखी तब मातासे बूझा–उसने पीहर को भेजदेने का वृत्तान्त सुनाया, इस बात को सुनते ही तिसि-प्रकार नंगधड़ंगे कंधेपर धोती डाले और हाथ में जलकी झारी लिये ही सास के घरको चलदिये, उनको इसबात का कुछ ध्यान नहीं था कि--मैं मार्ग में मैं नंगाही किस दशा में जारहा हूँ और सपाटा लगाये हुए श्वशुर के घर की ओर को चलदिये। उनको प्रेमरूपी रस्सीने ऐसा जकड़कर बाँधलिया था कि--लोकलज्जा और प्रतिष्ठा का कुछ भी ध्यान नहीं रहा। परन्तु इस निष्कपट प्रेम को देखकर परमदयालु भक्तवत्सल श्यामसुन्दर परमात्माने दयालु अन्तःकरणमें विचार किया कि–इसका ऐसा यह निष्कपट प्रेम यदि मुझ में होजाय तो इसका कितना उपकार हो। अच्छा तो इनके इस प्रेमको अब अपनी ओर खैंचकर इनके ऊपर अनुग्रह करूं, इधर तो भगवान् का ऐसा सङ्कल्प हुआ, उधर तुलसीदासजी के श्वशुर के घर पहुँचते ही, तहाँ सासआदि सबने जामाताकी ऐसी दशा देखकर विचारा कि–यह जो ऐसे नंगे ही चले आये हैं सो इन की माता बूढ़ी थी वह कहीं परलोकको तो नहीं सिधारगई? इसकारण लोकरीति के अनुसार वह सब अपने नेत्रों में आँसू भरलाये। इधर तुलसीदासजी भी 'मुझे देखते ही इनके नेत्रों में आँसू भरआये, सो कहीं मेरी प्रिय स्त्री का तो कुछ अशुभ नहीं होगया?' ऐसा मन में विचारकर रोने लगे, इसप्रकार एकायकी रोदन मचजानेपर दासी ने इन की स्त्री को

भी खबर करदी, वह तो पति की हानिकारक अतिरूपासक्तिको जानती ही थी सो उसने बातको छुपाने के लिये अपने माता-पिता से कहला भेजा कि—मेरे पतिको कभी २ ऐसा उन्माद होजाता है तब वह ऐसे ही नंगारूप बनाये फिरते रहते हैं, अतः इसमें दुःखित होने की कुछ बात नहीं है, यह वृत्तान्त जान श्वसुरने जामाताको वस्त्र आदि देकर घर में स्त्री के समीप जाने की आज्ञा दी, तुलसीदासजी ने देहली में पैर रक्खा कि—भगवान् की करुणारूप उस स्त्री ने उसीसमय निषेध करके समझाया कि हे स्वामिन्! आप मेरे लिये इतना कष्ट सहकर और लोकलज्जा तथा प्रतिष्ठा को त्यागकर आये हो; परन्तु यह तुम्हारा प्रेम यदि परमकृपालु, भक्तवत्सल, श्यामसुन्दर, कमलनेत्र, धनुर्धारी श्रीरामचन्द्रजी में लगा होता तो कितना उत्तम और अक्षय सुखका देनेवाला होता! नाथ! मेरा यह सुन्दर दीखनेवाला शरीर वास्तव में देखो तो मलमूत्र से भराहुआ है; नाक, कान, मुखआदि में अनेकों प्रकारका मल है। और शरीर में भी हाड़मांस रुधिर के सिवाय और क्या रक्खा है? इसकारण ऐसे तुच्छ मलिन और नाशवान् मेरे शरीरपरके प्रेमको आप श्यामसुन्दर श्रीरामचन्द्रजी की ओर को अवश्य लगाओगे, मुझे यह दृढ़ आशा है! इतना उपदेशमय कथन सुनते ही तुलसीदासजीके विचारके नेत्र खुले और वह शान्त होकर तत्काल मञ्जिल दरमञ्जिल चलते २ काशीजी में आकर मणिकर्णिका पर ठहरे। घाटपर पड़ेहुए हैं, बारबार मुखमें से राम रामकी धुन लगरही है और श्यामसुन्दर का दर्शन पाने के लिये किसी महात्माको गुरु करने की उत्कट इच्छा होरही है, इतनेही में नरहरिस्वामी प्रात कालका स्नान सन्ध्या करके लौटेहुए आश्रमको जारहे थे, उन्होंने हृदयद्रावक रामनाम की रटनाको सुनकर समझा कि—यह कोई आर्त्त और प्रेमी पुरुष है, तत्काल समीप में गये और वृत्तान्त बूझा। तब तुलसीदास जीने आद्योपान्त अपनी सब कहानी सुनाई और प्रार्थनाकरी

कि–इस शरीरको भगवान् श्यामसुन्दर का दर्शन कराने के विषय में यदि आप निश्चय दिलाते हैं, तब इस शरीर को रखता हूँ, नहीं तो अभी गङ्गार्पण करदेता हूँ, यह सुनकर नरहरिस्वामीने विचारा कि– भवभक्त के नेत्रों में प्रेमाश्रु आजाते हैं तब परमकारुणिक परमात्मा अवश्यही सुधलेते है, फिर यह तो अत्यन्त आतुर और सकल शरीर अर्पण करने को उद्यत होरहा है तो क्या इसको भगवत्प्राप्ति नहीं होगी ? ऐसा विचारकर कहनेलगे कि–उठ, कुछ चिन्ता न कर इस जन्म और इस शरीरमें ही तुमको दर्शनहोगा। तदनन्तर गुरुके चरणोंपर मस्तक रखकर उनकी टहल सेवाकरतेहुए तुलसीदासजी ने ९।६ वर्ष में उत्तमरीतिसे वेदशास्त्रादिपढे, और परम अनुरागरूप भक्ति का साधन किया। एकदिन जबवनमें बैठकर नित्यक्रिया करने के निमित्त गङ्गाके परलेपारगये तहाँ शौचक्रिया से निबटकर शेषबचे जलको फेंकदेनेपर उस अपवित्र जलसे एक पिशाच की तृप्तिहुई, तब उसने आग्रह करके कहा।कि–मुझसे कुछ सोना–हीरा–मोती आदि धनमाँगो तुलसीदासजीने कहा मुझको धनकी आवश्यकता नहींहै, यदि शक्ति होतो मुझको श्रीश्यामसुन्दर भगवान् का दर्शन कराओ, पिशाचने कहा–यह तो मुझसे होना कठिन है, परन्तु मैं तुमको एक उपाय बताता हूँ, उसके अनुसार कार्य करिये निःसन्देह आप की इच्छा पूर्णहोगी। वह उपाय यह है कि–आजकल गङ्गातटपर वाल्मीकि रामायण की कथाहोतीहै, तहाँ श्रोताओं में एक ओर को, जिसका शरीर कोढसे गलरहा है ऐसा पुरुष आकर बैठता है, कथा समाप्त होनेपर तुम उसके चरण पकड़लेना छोड़ना मत, वस वह तुम्हें श्री रामचन्द्रजी के दर्शन करादेगा। तिसी प्रकार तुलसीदासजी कथा समाप्त होनेपर उसके पीछे २ जानेलगे, कुछ देरमें नगर के बाहर पहुँचनेपर उस कोढी पुरुषने बूझाकि–तुम मेरे साथ क्यों आतेहो तुमको क्या चाहिये ? और मुझसे पुरुष से क्या मिलसकता है

तब तुलसीदासजीने चरण पकड़कर कहाकि--महाराज ! मुझे श्री-रामचन्द्रजीके दर्शन करादीजिये,तबउस कोढीने यह समझकर कि-अब यहमेरा पीछा नहीं छोड़ेगा,तत्काल कोढीकारूप त्यागकर अपना साक्षात्रूप धारण करलिया, वह साक्षात् पवनकुमार हनुमानजीथे उन्होंने तुलसीदासके पूर्णभक्तिभाव और दृढनिश्चय को जानकर ट दखदिया कि-तुमको श्रीरामचन्द्रजीका दर्शन होगा इस में कुछ सन्देह न समझो और जब मेरा स्मरण करोगे तब मैं भी तुमको दर्शन दूँगा। तिसके कुछदिन पीछे तुलसीदास जी गंगातटपर रामायणकी रचना करते समय लेखनी कान में रखकर कुछ विश्रामले रहे थे उसी समय गंगाके परलेपार घोडेपर सवार एक श्यामसुन्दर मूर्त्ति को देखा परन्तु चकित होकर मनमें विचारा कि-यह कोई राजकुमार है, तदनन्तर वह मूर्त्ति तहाँ ही अन्तर्धान होगई, इसके अनन्तर और कुछ दिन बीतनेपर तुलसीदासजी सोचनेलगे कि-देखो इतने दिन बीतगये परन्तु अभीतक श्रीरामचन्द्रजी का दर्शन नहीं हुआ और चित्त में अकुलाकर पवनकुमार की स्तुतिकर के स्मरण करा सो उसी समय हनुमान् जी प्रकट हुए,तुलसीदासजी ने हाथ जोडकर विनय करी कि-भगवान् ! क्या कारण है जो आपने अभी तक दर्शन नहीं कराया तब महावीरजीने कहाकि--अमुक दिन गंगा के परलेपार घोडेपर सवार श्यामसुन्दरकी मूर्त्ति प्रकट हुई थी फिर तुम नहीं कैसे कहते हो, तब तुलसीदासने किसी राजपुत्र का संदेह होना निवेदन करके बडे करुणास्वर से परमात्मा की प्रार्थना करी कि--हे श्यामसुन्दर ! परमकृपानिधे ! मैं कैसा अभागा हूँ कि आपने स्वयं दर्शन दिया परन्तु मुझे आपके दर्शन का पूर्ण लाभ नहीं हुआ मेरे रोम २ में पापभरा है परन्तु हे दीनबन्धो ! आपने अजामिल आदि का उद्धार करा है और शरणागत को नहीं त्यागते हो ऐसा वेदशास्त्र कहते हैं; सो हेकृपासिन्धो ! मैं आपके चरणो की शरण

में आयाहूँ इसलिये आप मुझे दर्शन देकर मेरा उद्धार करो। तब महावीरजी ने उनको हृदयसे लगाया और समझाबुझाकर कहा कि-- तुम धीरज धरेरहो, फिर साक्षात् दर्शन होने का अवसर आवेगा। अबतुम चित्रकूट को जाओ और तहाँ प्रभुकी इसीप्रकार सेवा करते रहो वस थोड़े ही दिनों में श्यामसुन्दर भगवान् का दर्शन होगा। तिसीप्रकार चित्रकूट पर जाकर तुलसीदासजीको प्रभु सेवा करतेहुए बहुतदिन वीतगये परन्तु दर्शन होने का अवसर न आया एकदिन चन्दन घिस रहे थे कि अन्तःकरण प्रभुका दर्शन करने के लिये आकुल व्याकुल होगया और नेत्रों में से आँसुओं की धारा चलनेलगी। जब योगी संन्यासियों को काठ की माला के दाने फिराने से प्रभु के दर्शन का योग प्राप्त होता है तब जो अपने आँसूरूपी दानों की मालाको फेररहा है उसको क्या प्रभु अपना दर्शन न देंगे? ऐसे असीम प्रेमको जानकर भगवान श्यामसुन्दर के नयनें करुणाका प्रवाह बहनेलगा और अब इस भक्तशिरोमणि का अन्त देखने का समय नहीं है ऐसा विचारकर तत्काल आठवर्ष के बालकका परममनोहर रूप धारकर तुलसीदासजी के समीप आये और बाबाजी कहकर उनको नमस्कार करा तथा पासबैठगये। तुलसीदासजी उस सुन्दर बालस्वरूप को देखकर बड़े प्रसन्न हुए, परन्तु फिरसन्देहग्रस्त होजाने के कारण तथा मनको व्याकुलता होने से उचित ध्यान नहीं हुआ। तबतो महावीरजी को चिन्ता हुई कि-- क्या यह सुअवसर भी यौंही जायगा? इसकारण आप तोता बनकर समीपके वृक्षपर बैठगये, इधर बालरूपी श्रीरामचन्द्रजी ने तुलसीदासजी से बूझा कि--बाबाजी मैं अपने हाथ से तुम्हारे चन्दन लगादूँ क्या? तुलसीदासजी ने कहा अच्छा उसीसमय प्रभु श्यामसुन्दर अपने कोमल हाथों से उन के मस्तकपर चन्दन लगाने लगे तब तोते के रूप में बैठेहुए हनुमान्जी ने कहा कि--

चित्रकूटके घाटपर भई सन्तनकी भीर। तुलसीदास चन्दन घिसै तिलक देत रघुबीर॥

ऐसा कहनेपर भी तुलसीदासका ध्यान उधरको नहीं गया तब फिर इस दोहरे को पढा, तदनन्तर श्रीरामचन्द्रजीने कहा बाबाजी! अब मैं तुम्हें दर्पण दिखाता हूँ दर्पण दिखाते में तुलसीदासजी को भगवान् श्यामसुन्दर की तेजस्वी अंगुलियें दीखगईं और इधर शुकरूप हनुमान्जीने उस दोहरे को तिसरा कर पढा तब तो तुलसीदासजी को ज्ञान हुआ कि-यही साक्षात् श्यामसुन्दर कमलनेत्र भगवान् श्रीरामचन्द्रजी हैं और प्रार्थना करके साक्षात् दर्शनका दिव्यसुख पाया। सार यह है कि श्रीनरहरिस्वामी के उपदेश से तुलसीदासजी का भक्तिरस कैसा बढा जिस से वह परमप्रेमी भक्त बनकर प्रभु से मिलगये इस में अधिक कहने की आवश्यकता नहीं है। तथा अपने प्रेमी भक्तके लिये परमदयालु परमात्माका अनेकों रूपों में अवतार होता है यह भी प्रकट होगया।

आजकल के सायन्टिफिक (शास्त्रज्ञ) पुरुषोंको यह असम्भव प्रतीत होगा परन्तु आत्मा, क्या है और सन्ध्या, प्राणायाम भक्ति आदि साधनों से आत्माकी उन्नति करके परब्रह्म की प्राप्ति किसप्रकार होती है, यह बात मैं आगे दूसरे व्याख्यान में कहूँगा।

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः॥

व्याख्यान दूसरा।

विषय-ब्रह्मविद्यासे सन्ध्या का सम्बन्ध।

त्वमादिदेवः पुरुषः पुराणस्त्वमस्य विश्वस्य परं निधानम्।
वेत्तासि वेद्यञ्च परञ्च धाम त्वया ततं विश्वमनन्तरूप॥

हे प्रियसमासद्गण! सनातनधर्मरूपी रेलगाडी, धमारूप स्टेशन पर हर्षरूप सीटी बजातीहुई आरही है और उपदेशकरूप स्टेशनमास्टर उपदेशरूप टिकट देकर, ईश्वर के चरणारविन्दरूप नगर स्टे-

ग्नपर पहुँचाने के लिये तयारहै। तैसेही ध्यानरूपी तार कुण्ड-
लनी से ब्रह्मरन्ध्र पर्यन्त खबर देने को तयारहै। इस स्टेशनपर
८४ लाख योनिरूप भिन्न२ प्रकार के टिकट दियेजाते हैं और उन
में फर्स्टक्लास (१ दर्जे) का टिकट मनुष्ययोनि है। उस के आश्राय
से धर्मरूप सर्वोत्तम गाडीपर चढने का उद्योग करना चाहिये, यदि
यह गाडी हाथसे निकलगई तो फिर पछतावाही रहजायगा, इसलिये
आगे के विचार की ओर आपलोग सावधान रहें।

सब विद्याओं में ब्रह्मविद्या सर्वोत्तम विद्या है, वह अनन्तकालके
लिये कल्याण करने वालीहै और इसविद्या को जाननेवाले ब्रह्मज्ञानी
होते हैं। पूर्वकाल में अग्निरूप गायत्री के कारण ब्राह्मण परमश्रेष्ठ
हुए, अपने तेजोबल से सबके पूज्य हुए, अधिक तो क्या बडे २
राजे भी हाथ जोडे हुए उन के सामनें खडे रहते थे और उनको अपने
राजसिंहासन पर बैठाते थे। राजायुधिष्ठिरने राजसूय यज्ञमें भोजन
कराने के लिये ब्राह्मणों को बुलाया, तब ब्राह्मणों नें स्पष्ट कहदिया
था कि-हम ऐसे यज्ञ में भोजन करने को नहीं आते, परन्तु अब
वह समय और ब्राह्मणों का वैसा तेज नहीं है, ब्रह्मविद्या के न होने
से ब्राह्मणों की हीन दशा होरही है। संन्यासी आदिकों की भी
यही दशा है। पहिले परम आदर सत्कार होता था, परन्तु अब
कमलण्डलु लेकर द्वार २ घूमनेपर भी कोई नहीं बूझता। क्षत्रियों
की भी ऐसी ही दशा है, जो क्षत्रिय अपनी क्षात्रविद्या के तेज से
बेधडक शत्रुओं के ऊपर टूटपडते थे और तोप की नालमें भी हाथ
देदेते थे, वह क्षत्रिय आज तेजोहीन होकर एकसाधारण बन्दूकका
शब्द सुननेपर भी अन्धेरी कोठरी में छुपकर बैठने का उद्योग करते
हैं, एक ब्रह्मविद्याके नहोने से ही दोनों वर्णों की यह दशा हुई है। वै-
श्यों की भी यही दशा है, और शूद्रों में तो सर्वथाही विपरीतभाव हो-
गयाहै वह शास्त्रकी आज्ञा की कुछ परवाह न करके अपनी बढे

से उच्चवर्णों के आचार विचारों को ग्रहण कर अपने को उच्च कहने लगे हैं। देखो रेलमें जब कोई ब्राह्मण बैठा होता है और उसके समीप कोई स्पर्श के अयोग्य नीच शूद्र आकर बैठता है तब ब्राह्मण उस से अलग को बचेहुए बैठने को कहता है तो इसके उत्तर में वह कहता है कि–मैंने भी टिकट का मूल्य दिया है, इसके सिवाय मैंभी मनुष्य हूँ तुमभी मनुष्य हो तब विचारा ब्राह्मण अपना छोटा पुस्तक उठाकर एक कोने में को जा बैठता है, तब वह शूद्र महाशय ब्राह्मणकी ओरको औरभी चरण फैलाकर बैठने लगते हैं सार यह है कि-जैसे हम लोगोंकी पोषाक में अन्तर पड़गया है तैसे ही वर्णों में भी गड़बड़ी हुई है। पहिले चरणोंतक लटकताहुआ अंगरखा और पैरके पञ्जेमात्र में भरकर आनेवाला जूता पहिनाजाता था, वह रीति बदलकर जूता घुटनोंतकका होते २ अब सब शरीर चमड़े से ही बाधाजाता है, जंघाओं तक जूता चमड़े का कमर में पेटी चमड़े की कमरसे कन्धोंतक पतलून बांधने के तस्मे चमड़े के शिरपर बलायती टोपी में चमड़ा और अंगरखा कोटकारूप पाकर कमरतकही रहगया वर्णों में भी ऐसीही उलटी दशा होगई है। ऐसी शोचनीय दशा आने का कारण केवल हमारा कर्मलोप है। जैसे किसी वर्णमालाकी लिपि में का पहिला अक्षर फटकर या पुस्तक को कीड़े के खालेने के कारण नष्ट होकर उसमें का दूसरा अक्षर ' ख ' ही उस पहिले के स्थानमें होजाय और ऐसा विपरीत ज्ञान होजाय कि–पहिले धोका हुआ वह ' क ' यही है तथा इसीप्रकार आगे का ' ग ' ख और ' घ ' ग मानलिया जाय तो केवल एकवर्ण की अव्यवस्था से भाषा में सर्वत्र अव्यवस्था होकर अर्थ का अनर्थ होसकता है तैसे ही ब्रह्मविद्या को प्राप्तकरने की आदि साधनरूप जो हमारी सन्ध्या तिससे विमुख होने के कारण हमारी सबप्रकार की व्यवस्थाओं में गड़बड़ी पड़ गई है। जैसे अंगरेजी भाषा के मूल २६ अक्षर हैं तैसेही ब्रह्मवि-

द्या के भी १ अहिंसा २ सत्य ३ अस्तेय (चोरी न करना) ४ ब्रह्मचर्य ५ क्षमा ६ धृति (धीरजरखना) ७ दया ८ आर्जव (सरलपना अर्थात् अहंपनेको त्यागकर सब से दीनतापूर्वक वर्त्ताव करना) ९ मिताहार (थोडा भोजन करना) १० शौच (शरीर और चित्त को पवित्र रखना) ११ तप १२ सन्तोष १३ आस्तिक्य (शास्त्र और गुरु के उपदेशमय वाक्योंपर विश्वास रखना) १४ दान १५ ईश्वर का पूजन १६ सिद्धान्त वाक्य श्रवण (उपनिषदादि को सुनते रहना) १७ ह्री (बुरेकार्यों में लज्जा करना और सत्कार्यों में किसी कीभी लाज न करना) १८ मति (संसारिक सुखोंका तो क्या स्वर्ग आदि ऐश्वर्य काभी लोभ न करके "ब्रह्म सत्य है और जगत् मिथ्या है" ऐसीदृढ बुद्धि रखना) १९ जप २० हुत (तमोगुणी रजोगुणी पुरुष पशुओंका और फलादिकोंका हवन करते हैं परन्तु ज्ञानी पुरुष अन्तर्दृष्टि करके विषयोंका इन्द्रियों में और इन्द्रियों का अन्तःकरण में हवन करते हैं) २१ आसन २२ प्राणायाम २३ प्रत्याहार (चित्त रुककर शब्दादि विषयों की ओर को चलायमान नहीं होता है तब इन्द्रियें भी रुकजाती हैं और अपने २ विषयों को ग्रहण नहीं करती है इसका नाम प्रत्याहार है) २४ धारण (नाभि चक्र आदि विशेष स्थान में चित्तको स्थिरकरना) २५ ध्यान (जहाँ चित्त की धारणा करी हो तहाँ ही उसकी एकाग्रता करके दूसरी ओर को न जानेदेनी) और २६ समाधि (ध्यान जब ध्येय के स्वरूप का होकर अन्य पदार्थ का ज्ञान भिन्न रूप से कुछ नहीं रहता है और ध्यान तथा पदार्थ दोनों का एकाकार होजाता है तो उसको समाधि कहते हैं) यह छब्बीस ब्रह्म विद्या के मूल अक्षर हैं, भगवान् पतञ्जलिने–यमनियमासन प्राणायाम प्रत्याहार धारणाध्यान समाधयोऽष्टावङ्गानि ' इसप्रकार योग (ब्रह्मविद्या) के आठ अंग कहे हैं, इन में पहिले दोअंग

यम और नियम का हठयोग प्रदीपका आदि ग्रन्थों में विस्तार के साथ वर्णन करा है और यम अहिंसा आदि दश भेद तथा नियम के तप आदि दश भेद कहे हैं इसप्रकार दोनों मिलकर बीस अंग होते हैं और शेष आसन आदि मुख्य छः अंग इसप्रकार सब २६ अंग हैं और ब्रह्मविद्या के मूल अक्षर अर्थात् कट कोड है।

एकसाथ जगत् भर के सब मनुष्यों से यदि बूझाजाय कि–तुमको क्या चाहिये? तो सब यही कहेंगे कि–हमे सुख, आयु, नीरोगता और ब्रह्मप्राप्ति (मोक्ष) यह चार पदार्थ चाहिये। इन में भी सब से पहिले आयु की विशेष आवश्यकता है, विचार देखो कोई अत्यन्त आसन्नमरण होकर पड़ा हो और डाक्टर आकर कहे कि–तुझे अच्छा करने के लिये पहिले तेरी पुष्ट गर्दन में शस्त्र से छेद किया जायगा फिर औषधि लगाई जायगी, तो वह यही उत्तर देगा कि–महाराज मेरी भुजा को चाहे चीर डालो परन्तु कृपा करके गर्दनको बचादो, न जाने कदाचित् गर्दन से मर्मस्थान में शस्त्र लगनेसे मरण ही होजाय, सार यह है कि–बुढापे में भी उस को जीवित रहने की ऐसी प्रबल इच्छा होती है, इस कारण मनुष्य की सब से पहिली प्रियवस्तु आयुही है इसीप्रकार शेष तीनों बातों की भी कौन भाग्यवान् इच्छा न करेगा? यह चारों प्रकार के लाभ सन्ध्यावन्दनसे होते हैं, सारांश यह है कि ब्रह्मरूपी हीरा हमारे पास ही है, परन्तु उसका बतानेवाला श्रेष्ठ गुरु चाहिये, इस में उदाहरण है कि–एकसमय एक गँडरिया भेड़ें चराने को जङ्गल में गया, दैववश वहाँ उसने एक पड़ाहुआ हीरा पाया, परन्तु उसको हीरे की पहिचान नहीं थी, इसकारण उस ने एक चमकीली काच का टुकड़ा समझ एक डोरे में बांधकर अपनी भेड़के गले में पहिरादिया फिर कुछदिनों में तहाँ दुष्काल पड़ा और लोग अन्नके लिये तरसनेलगे तो इस बिचारे की दुर्दशा की दुर्दशाका तो कहनाही क्या? पावभर

अन्न भी मिलना कठिन होगया, तब तो दीनहीन होकर घर में पड-रहा, इसी अवसर में उसके यहाँ परदेश से कोई सम्बन्धी आया, वह अपने सम्बन्धी की ऐसी दुर्दशा देखकर बडा दुःखित हुआ, इतने हीमें वह भेड उसकी दृष्टि के सामने आगई और उसके कंठ में बँधा हुआ हीरा भी दीखा, तब उसने बूझा कि–भाई! यह किसकी भेड है और इसके गले में क्या बाँधा है? गँडरिये ने उत्तर दिया कि–यह मेरी भेड है और इसके गले में मैने इस२ प्रकार से मिली हुई चमकदार काच बाँध दी है, तबतो वह कहने लगा कि–भाई! यह छोटी वस्तु नहीं है, यह हीरा है और तू बाजार में लेकर जायगा तो तुझको सहज में ही इसके २० । २५ सहस्र की जगह आधी कीमत तो भी मिलजायगी, तबतो वह उसी समय बाजार को गया और उस हीरे को बेचकर बहुतसा धनलाया जिस से उसका सब कष्ट दूर होकर वह एक धनवान् बनगया। इसीप्रकार ब्रह्मरूपी रत्न हम सबोंके कंठ में बँधा हुआ है, परन्तु हम उस बहुमूल्य मणि को जानते नहीं हैं, इसकारण ही हमारी ऐसी दीन हीन दशा होरही है। तथापि आशा है कि–सच्चे गुरु के मिलने पर हमें उस का सच्चामूल्य मालूम होजायगा, जिससे हमको ऊपर कहेहुए चार प्रकार के लाभ होंगे। सार यह है कि–संध्याही ब्रह्मविद्याकी प्राप्ति करानेवाली है और उस की उत्तम रीति जानने के लिये हमको उद्योग करना चाहिये। अब हमारे सन्ध्याकरने से यदि हम को यह चार लाभ होंगे तो उसको उचित रीतिसे करने के लिये, पहिले हमारे शरीर की कैसी रचना है, इस विषय में थोडासा विचार करते हैं।

यह स्थूल शरीर किलारूप है, पृथ्वी आदि पांच तत्व इस की दीवारें हैं चमडा, रुधिर, मांस, हड्डी आदि सात धातुएँ खाई हैं चतुर्दलचक्र षट्दलचक्र आदि सात मंजिलें हैं साढेतीनलाखनाडियों का परकोटा बना है। सातमंजिलें यह हैं (१) गुदा और मूत्रे-

द्रिय के मध्यमें चतुर्दलचक्र है इसको (Pelvic plexus) अर्थात् आधारचक्र कहते हैं इस के अधिष्ठातृदेव भगवान् गणेश हैं। और इसचक्र में ज्योतिष्मती भगवती कुण्डलिनी है। नाभि के नीचेलिंग के पश्चिमभाग में षट्दलचक्रहै इसको (Hypogastric plexus) अर्थात् स्वाधिष्ठानचक्र कहतेहैं इसके अधिष्ठातृदेवता भगवान् ब्रह्मा हैं। (३) नाभिमें दशदलचक्र है इसको (Epigastric plexus) अर्थात् मणिपूरचक्र कहते हैं इस के अधिष्ठातृ देवता भगवान् विष्णु हैं। (४) हृदय में द्वादशदलचक्र है इसको (Cardiac plexus) अर्थात् अनाहतचक्र कहते हैं इसके अधिष्ठातृदेवता भगवान् शिव हैं (५) कंठ में षोडशदलचक्र है इसको (Carotid plexus) अर्थात् विशुद्धिचक्र कहते हैं इसके दाईं ओर इडा और बाईं ओर पिंगला तथा मध्य में सुषुम्ना है इसके अधिष्ठातृदेवता रुद्र हैं (६)भृकुटिस्थानमें द्विदलचक्रहै इसको(Medulla oblongata)अर्थात आज्ञाचक्र कहते हैं और कोई इसको बिन्दुस्थान भी कहते हैं (७)मस्तक में सहस्रदलचक्र है इसको (Brain) अर्थात् ब्रह्मचक्र कहते हैं इस में संविद्रूप सच्चिदानन्द हैं।

इसप्रकार यह ७ मंजिलें हैं। किसी को शंका होगी कि शरीर के भीतर यह कमल और उनकी पखुरियें या चक्र हैं यह कैसे हो सकता है ? क्या सत्यही कमल औ चक आदि हैं ? इसका उत्तर यह है कि वहकमल आदि तालाब में के कमल आदि की समान नहीं हैं, किन्तु उन स्थानों में बहुत सी नाडियें इकट्ठी होकर जो एकगाठ बनगया है उसका आकार कमल की समान है। तरबूजके डंठलकी समान मस्तक पर लटकती हुई शिखा केवल मूर्खता का दृष्टान्त है ऐसा कितने ही मिश्रधर्मी और नवशिक्षित कहते हैं, परन्तु सनातधर्म में यह एक मुख्यबात है जैसे किलेमें राजमंदिर के समीप वा रत्नमय खजाने के चारोंओर सिपाहियों के पहिरेका बं-

दोवस्त होताहै और ऊपर ध्वजा फड़कती रहती है तैसे ही ब्रह्मरूपी रत्न वा राजा मस्तक में के सहस्रदलचक्र में चारों ओर से प्रबन्ध हो कर रहता है, और तहां उसको जतानेवाली शिखारूप ध्वजा फड़करही है। इसकारणही उस राजारूप,वा रत्नरूप ब्रह्मको पानेके लिये हम जब सन्ध्या करने को उद्यत होते हैं उससमय पहिले ब्रह्म सूचक गायत्रीमंत्र से शिखा को बाधना कहा है।

ऊपर वर्णन करेहुए शरीररूपी किले में परमात्मारूपी हीरा है उस को लेनेके लिये मानों जीवरूपी चोर रातदिन उद्योग करता रहता है उसको एक के पीछे दूसरे खाई आदि से रुकना पडता है हरएक जीव इनके पार नहीं होसकता कदाचित् उसने थोडासा उद्योग कियाभी तो उसकी दशा ठीक नहीं रहती है अर्थात् उपरोक्त पंचतत्त्वों की दिवारों में अथवा रक्त मांसादि की खाइयों में ज्वर खांसी आदि से हानि पहुंचने लगती है और उससे एक प्रकार की अस्थिरता होकर कभी २ शरीर का नाशहोने का भय होता है। पहिले समय में वाल्मीकि आदि ऋषियों के शरीर पर बमई आदि बनगईपरन्तु वह उस की कुछ परवाह न करके ब्रह्ममेंही मग्न रहते थे वैसी शक्ति आजकल हममें नहीं रही है हममें ऐसी शक्ति न रहने का कारण क्या है? क्या पहिले पुरुष ईश्वर को लाञ्च और रिशवत देतेथे और हम नहीं देते हैं, इसकारण वह हमारी ऐसी दुर्दशा करता है? प्यारे सभासदों! यह बात नहीं है परन्तु हमारे पूर्वपुरुष जिस निष्ठा से रहतेथे वह निष्ठा हम में नहीं रही इसकारण ही ऐसी हीन दशा होरही है। यद्यपि दशा बहुत खराब है परन्तु उद्योग करने से हम अपना बहुत कुछ सुधार करसकते हैं। अब, जैसे किसी राजा से मिलना होता है तो पहिले द्वारपाल से मेलकरने पर युक्ति से कार्य सिद्ध होता है, तैसेही शरीररूपी स्थान के प्राणरूपी मुख्य द्वारपाल से हमको मेलकरना चाहिये। सब इन्द्रिय आदिकों में प्राणही श्रेष्ठहै इस विषयपर

छांदोग्य उपनिषद् में इस प्रकार का इतिहास है कि—

यो ह वै जेष्ठं च श्रेष्ठं च०॥१—५॥ अथ ह प्राणा अहं९ श्रे यसि व्यूदिरेऽहं९ श्रेयानस्म्यहं९ श्रेयानस्मीति ॥ ६ ॥ ते ह प्राणाः प्रजापतिं पितरमेत्योचुर्भगवन् को नः श्रेष्ठ इति,तान्होवाच यस्मिन्व उत्क्रान्ते शरीरं पापिष्ठतरमिव दृश्येत स वः श्रेष्ठ इति ॥ ७ ॥ सा ह वागुच्चक्राम सा संवत्सरं प्रोष्यपर्येत्योवाचकथमशकतर्ते मज्जीवितुमिति यथाकला अवदन्तः प्राणन्तः प्राणेन पश्यन्तश्चक्षुषा शृण्वन्तः श्रोत्रेण ध्यायन्तो मनसैवमिति प्रविवेश ह वाक् ॥ ८ ॥ चक्षुर्होच्चक्रा० ॥ ९—११ ॥ अथ ह प्राण उच्चिचक्रमिषन् स यथा सुहयः पड्वीशशंकून्संखिदेदेवमितरान् प्राणान्समखिदत्तं९ हाभिसमेत्योचुर्भगवन्नेधि त्वं नः श्रेष्ठोऽसि मोत्क्रमीरिति ॥१२ ॥ अथ ह० ॥१३—१५ ।

यह सम्वाद बहुत बड़ा है परन्तु इसका तात्पर्य यह है कि एकसमय सब इन्द्रियों में श्रेष्ठ कौन है इस बातका विवाद होकर यह निर्णय करने के लिये ब्रह्माजी के पास गईं तब ब्रह्माजी ने कहा तुममें से हर-एक, एक२ वर्षतक शरीरसे बाहर रहो तब जिसके न होने से काम अटकेगा मैं उसी को श्रेष्ठ समझूँगा, तिसीप्रकार सब इन्द्रियें बारी २ से बाहर निकलगईं परन्तु काम न अटका । नेत्रजानेपर अन्धे की समान, कान जानेपर बहिरे की समान इत्यादि सब व्यवहारों का निर्वाह होगया, परन्तु अन्त में "सोहम् सोहम्" करनेवाला प्राणही श्रेष्ठ ठहरा, क्योंकि इसके जरा चल विचल होते ही सब इन्द्रियों का काम बन्द होनेलगा, और शरीर पञ्चतत्वों में मिलनेलगा (नष्ट होनेलगा) तब सब इन्द्रियों ने प्रार्थना करी कि हे प्राण तू हम से अलग न हो सार यह है कि प्राणही श्रेष्ठ ठहरा और उसको शरीरका द्वारपाल बनाया । यह केवल जागते ही में अपना पहिरा नहीं देता है किन्तु सोतेसमय भी अपना काम करता रहता है,और उस समय

चारोंओर सुनसान होने के कारण मानो चोरों का अधिक भय समझ कर अपना काम बडे जोरसे चलाता है । बस इस पहिरेदार से मित्रता करनेपरही शरीररूप किले में स्थित परमात्मारूपी हीरा सहज में ही हाथ लगजायगा । प्राणायाम करनाही प्राणों से मित्रता करना है और वह प्राणायाम हमें सन्ध्यावन्दन में ही सीखना पड़ता है, इस कारण सन्ध्याही हमारे लिये ब्रह्मप्राप्ति का साधन है, इसके द्वारा ही हमें ईश्वर की प्राप्ति होगी, अतः यह सन्ध्या ठीक २ विधिपूर्वक होनी चाहिये, आजकल बहुत से लोग जैसे सटपट करके सन्ध्या करलेते हैं यह ठीक नहीं, आजकल सन्ध्या के समय प्राणायाम करनेवाले आसन या पटलेपर बैठ नाक कानको हाथ लगा थोड़ासा पानी छोड़ पढते हैं गायत्री मन्त्र, ध्यान रहता है चूल्हे की ओर, दिखावे को परमात्मा का ध्यान करते हैं परन्तु ध्यान होता है कचहरी या व्यापारका, ऐसा करना केवल शुष्कवाद है इससे कुछ लाभ नहीं होसकता, अतः इस अन्धपरम्परा को छोड़कर वास्तविक रीति से सन्ध्या करनेपर ही आत्मोन्नति होगी ।

परम हितकारिणी प्राणायाम की क्रिया को योग्य रीति से करने पर प्रारंभ में कठिनता प्रतीत होगी,परन्तु अभ्याससे सब कुछ सिद्ध होसकता है इसकारण जिस कार्य के प्रारम्भ में कष्ट हो और परिणाम में सुखमिले उसको स्वीकार करना ही विचारवान् का लक्षण है,परन्तु अज्ञानी पुरुषोंको उसका तत्व नहीं प्रतीत होता है । बालक को पाठशाला में भेजनेपर जब गुरु अक्षर सिखाने लगतेहैं उस समय वह सिखाना उस बालकको इतना कष्टदायक प्रतीत होता है कि वह उस सीखने से भागता है और चित्त में पिता और गुरु को शत्रु की समान समझने लगता है, परन्तु अन्त में जब बड़ी २ परीक्षाओं के पार होकर बहुतसा धन पाता है तब परम आनन्दित होता हुआ कहता है कि मेरे माता पिता और गुरु को धन्य है जिनकी

कृपा से मैं इस योग्य हुआ। ब्रह्मविद्या के विषय में भी यही बात है प्रारम्भ में यद्यपि यम नियम प्राणायाम आदि कार्य कठिन प्रतीत होते हैं परन्तु जब अभ्यास करते२ वह सिद्ध होजाते हैं तो अन्त में उन से सच्चा सुख मिलता है। पहिले कहा ही था कि ब्रह्मविद्या के २६ अक्षर हैं जैसे कोई भी भाषा सीखनी हो तो उस की सम्पूर्ण वर्णमाला सीखनी पड़ती है और उस वर्णमाला का ज्ञान होनेपरही वह भाषा समझमें आती है, तैसे ही ब्रह्मविद्याको प्राप्त करने के लिये उस के अहिंसा सत्य आदि वर्ण भी सीखने चाहियें उन वर्णों में अहिंसा स्वरों की समान है, उसके बिना व्यंजनरूप अन्य गुणों से कुछ काम नहीं चलसकता। मैं एक व्याख्यान अहिंसा विषय में ही विस्तारके साथ अलग कहूँगा, इसकारण अब इसब्रह्मविद्याकी वर्णमालामें का दूसरा वर्ण जो सत्य उसके विषय में कुछ कहता हूँ।

मनुष्यको सदा सर्वदा सत्यही बोलना चाहिये यदि सत्य न हो तो इस जगत्में के व्यवहार कभी चलही नहीं सकते, और पद पद पर अव्यवस्था होकर मनुष्यसमाज और उन मनुष्यों के कुटुम्बोंकी दशा भी बिगड़जाय इसकारण, ब्रह्मविद्या के प्राप्त करने की इच्छा करनेवालों को यह गुण अवश्य ही सम्पादन करना चाहिये श्रीमनु भगवान् ने कहा है कि—

> सत्यं ब्रूयात् प्रियं ब्रूयान्न ब्रूयात्सत्यमप्रियम् ।
> प्रियञ्च नानृतं ब्रूयादेष धर्मः सनातनः ॥

अर्थात् सत्य बोले, मधुर बोले, और सत्य भी ऐसा बोले जिस में दूसरे को कठोर प्रतीत न हो, अर्थात् उस से किसीका चित्त न दुखे दूसरे के चित्तको दुखानेवाला सत्यभी दोषदायक होता है। समझदेखो कि—कोई पुरुष बैठ चोर मोहन करता है उस से यदि कोई कहे कि वाह आप तो ऐसा चोर पर हाथ फेरते हैं? तो यद्यपि यह कहना सत्य है परन्तु ऐसा सुनकर दूसरे पुरुषको क्रोध

आवेगा। इसकारण यदि ऐसा कहाजाय कि—महाशय! आप की पाचनशक्ति औरों की अपेक्षा श्रेष्ठ है, तब उस को असत्य प्रतीत न होकर अपनी प्रशंसा प्रतीत होगी, तिसीप्रकार जब कोई प्रवीण न्यायाधीश किसी फाँसी के कैदी को हुक्म सुनाता है तो वह सुनाने के अनन्तर फिर कहता है कि तेरे ऊपर मुझे बडी दया आती है और मेरी इच्छाथी कि तुम को इस दण्डसे मुक्त करदूं परन्तु क्या करूं! मैं कानून से बँधाहुआ होने के कारण विवश हूं, तो मरणकाल में भी वह कैदी उस न्यायाधीश को बुरानहीं कहताहै सार यह है कि सत्य होनेपर भी जो प्रिय प्रतीतहो उस वचनको ही बोले, ऐसा होते २ कदाचित् अप्रिय होनेके भय से मनुष्य असत्य प्रिय वचन न बोलने लगें इसकारण मनुजी कहते हैं कि प्रिय होने पर भी जो असत्य हो उसवचन को कभी न कहे। यह सत्य बोलने के महत्व का नियम ध्यान में रखना चाहिये इस विषय में दृष्टान्त है कि—एक पुरुष को बैगनों का साग प्रिय लगता था इस कारण उस ने अपने सेवक से कहा कि परमेश्वरने यह साग मनुष्य के लिये बहुतही अच्छा बनाया है, तब वह सेवक स्वामी की मनसा देखकर कहनेलगा कि हां साहब इस कारण ही परमेश्वरने इस उत्तम फल के ऊपर छत्र रखदिया है। उसदिन उसने बैगनों का साग बनवाकर खूब खाया और दूसरे दिन उस से विकार होकर दुःख बढनेलगा तब तो वह बोला-कि यह बडा बुरा साग है यह सुन उस खुशामदी सेवक ने कहा हां महाराज इसकारण ही परमेश्वर ने इसके मुखपर कांटे छेद दिये हैं इतना सुनवह स्वामी अचंभे में होकर कहने लगा कि क्योंरे कल तैने बैगनों की प्रशंसा की थी और आज ऐसी निन्दा करता है इस में तेरा कौनसा कहना सत्य समझा जाय? उसने उत्तर दिया मैं बैगनों का नौकर नहीं हूं! मैं तोआपका सेवक हूं इसकारण जो बातें आपको प्यारी लगें वही क-

हता हूं, सार यह है कि ऐसी असत्य मिली मुहदेखी सची बात को त्यागना ही अच्छा है परन्तु आज कल ऐसी मुंहदेखी बातोंका प्रचार अधिक बढ़गया है जिससे मनुष्यसमाजकी बड़ी हानि होती है, जहां तहां हरएक काममें पॉलिसी देखने में आती है परन्तु जब यह कुचाल वन्द होगी तबही मनुष्यसमाज का कल्याण होगा और ब्रह्मविद्या में तो ऐसी कुचाल का लेशमी ठीक नहीं । यद्यपि यहब त ठीक है कि जिसको ऐसा असत्य बोलनेका स्वभाव पड़गया है वह एक दिन में दूर नहीं होगा परन्तु उसको उस कुचाल के त्यागने का हर समय ध्यान रखना चाहिये । आज बीस भाग असत्य और पांच भाग सत्य बोलता है तो कल से उन्नीस भाग असत्य और छै भाग सत्य,आठ दिन के अनन्तर अठारह भागअसत्य और सात भाग सत्य बोले इस प्रकार बढ़ातेर अन्त में पंचीसों भाग सत्य बोलने लगेगा । इसपर कोई शंका करे कि सन्ध्या में पापों को दूर करनेवाला मंत्र कहा है उस से रात्रि के (Mydearfriendtakeaglassforny love) इत्यादि पापों का प्रक्षालन प्रातःकाल की सन्ध्या से और दिनभर झूट बोलना जेब काटना झूठी दस्तावेज बनाना गरीबों की गरदन मरो ड़ना इत्यादि पापों का प्रक्षालन सायंसन्ध्या से होता है, यदि कोई ऐसा समझता होतो व्यर्थ है । सन्ध्या में पापनाशन का ऐसा विपरीत अर्थ नहीं किन्तु देखकर चलते में भी यदि अनजान में पैर पड़कर चींटी आदि कुचल जाय या किसी अपरिहार्य कारण से कोई पाप बनजाय तो उस पाप को दूर करने के लिये ही सन्ध्या में का अघमर्षण मंत्र है । जानबूझ कर लोगों की गर्दन मरोड़ने के लिये नहीं । तीसरा गुण अस्तेय है, दूसरे की वस्तु न चुराने का नाम अस्तेय है इस गुण का पालन भी ध्यान देकर करना चाहिये नहीं तो चाहे जिस की वस्तु चाहे जो कोई लेने लगेगा तो जगत् में व्यवस्था न रहेगी मनुष्यों के व्यापार सर्वथा बन्द होजायंगे और ऐसीहीन दशा से भी

अधिक दुर्दशा भोगनी पड़ैगी इसकारण दूसरे की वस्तु लेनेकी इच्छा कों सर्वथा ही त्यागना चाहिये, ब्रह्मविद्या के साधकों के तो स्वप्न में भी यह बात न आनी चाहिये । एक स्त्री अपने पति के साथ मार्ग में चली आरही थी पतिने देखा कि एक मोहर पडी है उसने यह विचार कर कि कदाचित् मेरी स्त्री क मनमें इसको लेने की पापवासना न उत्पन्न हो इसकारण आगेबढकर उस मुहरपर एक मुट्ठीधूंठ डालदी जब स्त्री बढकर आई तो उसने कहा कि तुम झंपटकर आगे क्यों चले आये पति ने उत्तर दिया कि हे प्रिये तहाँ एक मोहर पडी-थी तुम्हें उस को लेने की इच्छा न हो इसकारण मैंने आगे बढकर उस पर धूल डाली थी उस पतिव्रता ने उत्तर दिया कि हे प्राणनाथ!आप की दृष्टि में अबभी सुवर्ण की चमक है नहीं तो आप उसपर धूल न डालते, तब उस पुरुष ने कहा कि प्रिये तू धन्य है तुझ में अस्तेय धर्म मुझ से भी अधिक है सार यह है कि मन वशमें बिनाहुए ब्रह्मविद्या प्राप्त नहीं होसकती ।

इसीप्रकार धृति भी परम आवश्यक गुण है पुराणों में महात्मा वशिष्ठजी का धैर्य प्रसिद्धही है । विश्वामित्रजी ने उन के सौ पुत्रों को मारडाला तथापि उन ब्रह्मर्षि का धैर्य नहीं डिगा, ब्रह्मविद्या को प्राप्त करने में अनेकों प्रकार के व्यावहारिक और दैवी विघ्न होते हैं परन्तु उन से किञ्चिन्मात्र भी डिगना न चाहिये, च है कुछ होजाय धैर्य को नहीं छोडूंगा ऐसी दृढता रखनी चाहिये, इस सद्गुण के विषयपर महाभारत में एक अतिरसभरी कथा है यदि आपलोग उसपर ध्यान देंगे तो इस सद्गुण की महिमा सहजमें ही ध्यानमें आजायगी । जिस समय महाराज धर्मराज युधिष्ठिर ने अश्वमेध यज्ञके लिये श्यामकर्ण घोडा छोडा था तब वह जाते जाते ताम्रध्वज राजा के नगर के समीप आया, उस को ताम्रध्वजके पुत्र मयूरध्वजने पकडलिया। पीछेसे अर्जुन और श्रीकृष्ण उस घोडे की रक्षा करने को सेना सहित आरहे थे उन्‌

को समाचार मिला कि ताम्रध्वज के राज्य में हमारा घोड़ा पकड़ा गया है उस को छुड़ादेने के लिये अर्जुन ने लिखकर भेजा परन्तु राजाने वह बात न मानकर अपने पुत्र मयूरध्वज को क्षत्रियधर्मानुसार अर्जुन के साथ युद्ध करने को भेजा। अतिघोर युद्ध होते होते अर्जुन ने मयूरध्वज का रथ सौ हाथ पीछे को हटा दिया तबतो मयूरध्वज ने भी अर्जुन का रथ दो हाथ पीछे को हटाया जब मयूरध्वज अर्जुन का रथ पीछे को हटारहा था उस समय श्रीकृष्णजी ने उसको धन्यवाद दिया, यह देख अर्जुन न सहसका और क्रोध में भरकर भगवान् से कहने लगा कि मैंने मयूरध्वज के रथ को सौ हाथ पीछे हटा दिया तब तो आप मौन रहे और इस ने मेरा रथ दोही हाथ पीछे हटाया उसको आप धन्यवाद देते हैं ? भगवान् ने कहाकि हे अर्जुन इसका रथ साधारण लकड़ी का बनाहुआ और साधारण घोड़ों से जुता है परन्तु तेरा रथ दैवी है तिसपर भी सब ब्रह्माण्डका भार लिये हुए मैं उस के ऊपर बैठाहूं; तथापि यह इतनेभार को पीछेको हटाता है, क्या यह बड़ा भारी आश्चर्य और धन्यवाद देने की बात नहीं है ? तब अर्जुन निरुत्तर होकर बूझने लगाकि इस में यह पराक्रम कहांसे आया इसपर श्रीकृष्णजी ने कहाकि—भाई! इसके पिता में सर्वोत्तम धृति (धैर्य) गुण है उसीका यह फल है। तब अर्जुन ने कहा कि—किसी प्रकार मुझे इसकी परीक्षा करके दिखाओ। तब तो अर्जुन को निश्चय कराने के के लिये श्रीकृष्णजी ने उसी समय साधकारूप रक्खा और अर्जुन को चेला बनाकर साथ में एक माया का बनायाहुआ सिंह लेलिया तथा ताम्रध्वज राजा के द्वारपर जा पहुँचे, द्वारपाल ने राजा से निवेदन किया कि—महाराज द्वारपर अतिथि आये हैं, तब राजा परम प्रसन्नहुआ और साधुओं को महल में बुला सत्कार के साथ आसन देकर विनय के साथ प्रार्थना करी कि—साधुजी! आपकी क्या इच्छा है ? तब साधुजी ने कहाकि—मेरे इस सिंह

को मनुष्य का मांस भक्षण करने की इच्छा है, राजा अतिथि सत्कार करने में चतुर था, अतः उसने कहा कि--बहुत अच्छा, खून के अपराध करने के कारण फाँसी पानेवाले कैदी हैं, उन में से एक सिंहके लिये बुलवाये देता हूँ। तब साधुओं ने कहा कि हम को ऐसा अमङ्गल मांस नहीं चाहिये, हमको तो तेरे पुत्र मयूरध्वज के दाहिने अंग का मांस चाहिये तुम से होसके तो दे? राजा ने स्वीकार करलिया और रणवास में जा रानी की भी संमति ली तो वह भी कहने लगी कि महाराज! यदि साधुओं की इच्छा इसप्रकार ही पूरी ही तो कुछ चिन्ता नहीं है, फिर पुत्रको बुलाकर बूझा तो उस ने कहा कि--तात! यह शरीर किसी न किसी दिन तो नष्ट होयगा ही, फिर दुःख में लिप्त होकर मरने की अपेक्षा जो साधुसन्तों के कार्य में आजाय तो सार्थक होजायगा, अतः मुझे भी यह बात स्वीकार है और तयार हूँ, तब राजाने आकर अतिथियों से कहा कि--आप उठिये और स्नान आदि से निबटकर मनुष्यका मांस लीजिये, तब, राजसभा इकट्ठी होजानेपर वध करने के लिये पुत्रको हमारे सन्मुख लेकर आओ साधुओं ने ऐसी आज्ञा करी, सो मन्त्री और दरबारियों से सब राजसभा भरजाने पर, साधु, राजा, रानी और वह पुत्र आये, तब राजा और रानी से साधुओं ने कहा कि--तुम इसके शिरपर आरा रखकर काटो और तुम तीनों में से किसी के भी नेत्रों में यदि आँसू आगये तो मैं उस अपवित्र मांसको न लेकर ऐसे ही लौटजाऊँगा तीनों ने यह नियम स्वीकार करलिया परन्तु दरबारियों को इस से बडाभारी दुःख हुआ और रो २ कर कहनेलगे कि--आज हमारे राजवंश का नाश होता है तथा एकसाथ सबके मुख से रामनाम की ध्वनि निकलनेलगी। इधर राजा और रानी ने पुत्रके मस्तकपर आरा रखकर चीरना प्रारम्भ करदिया; चीरते२ नाकपर्यन्त आरा आनेपर बाएँ नेत्र में से कुछ आंसू निकलनेलगा तब साधुने कहा हाथ रोको२

यह पुत्र रोता है, अब मैं इस मांसको न छूँगा तब वह पुत्र ईश्वर का ध्यान कर करुणास्वरसे कहनेलगा कि–हे दयासिंधो ! हे दीनवत्सल ! हे भगवन् ! अब कहांतक अन्त टटोलोगे ! देखो मैं साधुओं के सत्कारके लिये अपना शरीर देताहूँ परन्तु यह केवल दाहना अंगही लेते हैं, सो बाम अंग वृथा जायगा अतः वाम नेत्र में आँसू आया है, यह सुन साधुजी ने कहा अच्छा हम दोनों ही अंगले लेंगे, फिर सब शरीरको चीरकरटुकडे२ करके सिंह के आगे डालदिया । इधर रसोई तयार होनेपर ताम्रध्वज ने बाम्रपरोसे तब साधुजी ने कहा–तुम, रानी और पुत्र तीनो भी मेरे सन्मुख आकर भोजन करो, तब तो राजा विह्वल होकर कहनेलगा कि–, महाराज ! मैं पुत्रको कहासे लाऊँ ! साधुओंने कहा घवडाओमत घर में जाकर बुलालाओ। साधुओं के वचन पर पूर्ण श्रद्धा होने के कारण राजाने महल में भीतर जाकर पुत्रको पलँगपर लेटाहुआ देखा और उठाकर लिवालाया, उसके आते ही आकाश में से पुष्पों की वर्षा हुई और श्रीकृष्णजी ने साक्षात् दर्शन देकर स्त्रीपुत्रसहित राजाको कृतार्थ करा, अर्जुन विचारा मौन बैठारहा, उस ने मुख से एक अक्षर भी नहीं निकाला, अन्त में श्रीकृष्णजी ने वर मांगने को कहा तब राजा ने कहा कि–मैं यह वर मांगता हूँ कि कलियुग में धर्म की ऐसी प्रचण्ड परीक्षा किसी की न कीजाय । धैर्य की ऐसी महिमा है । अगले व्याख्यान में अहिंसा के विषय में अनेकों शास्त्र और मतों के विचार दिखाकर विशेष विचार कियाजायगा ॥

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ।

व्याख्यान तीसरा ।

विषय–अहिंसा

त्वदीयरूपा निखिल चराचर, प्रकाशन्ति भाति प्रकार्यकारणम् ।
त्वं कारणानामसि कारणप्रभो त्वामस्वरूपेण जगत्प्रविष्टः ॥

इस सनातनधर्मरूपी जहाज में बैठेहुए यात्रियोंको मैं, मङ्गलाचरण-

णरूपी परोपकार पर पहुँचानेका यत्नकरता हूँ। ब्रह्मविद्या की प्राप्ति के लिये सन्ध्या परम आवश्यक है और उस के अंग अहिंसा आदि धर्मों के पालन भी अवश्य करना चाहिये,यह बात पहिले व्याख्यान में कही है तथा सत्य, अस्तेय, धृति इन विषयों परभी संक्षेप से कहा था, आज केवल अहिंसा विषय परही कहने की इच्छा है।

पवित्र सनातनधर्म में हिंसा को किंचिन्मात्र स्थान न देकर सकल प्राणियों की तृप्ति होने के लिये ब्रह्मयज्ञ, देवयज्ञ, पितृयज्ञ, भूतयज्ञ और अतिथियज्ञ यह पंचयज्ञ कहे हैं। पहिले समय में यह यज्ञ यथाविधि किये जाते थे परन्तु अब उन पंच महायज्ञों के न होने से उन के अधिष्ठातृ देवता कुपित होते हैं और हमारी बहुत हानि करते हैं। पंचमहायज्ञ करना तो दूर रहा, लोग और उलटा अनेकों प्रकार की हिंसा करके पापाचरण करते हैं। हिंसा शब्द का अक्षरार्थ 'अपने सुख के लिये दूसरे का प्राणान्त करना' है। परन्तु यदि हिंसा शब्द का व्यापक अर्थ लियाजाय तो—किसी को ताड़ना करना, निन्दा करना वा जिसप्रकार किसी को दुःख हो तैसा करना,इत्यादिसब ही बातें हिंसा में आजाती हैं। अतः केवल किसी का प्राणान्त करने ही का नाम हिंसा नहीं है किन्तु दूसरे को पीडा पहुँचानेवाले हरएक कार्य का नाम हिंसा है और उसी को सर्वथा त्यागना अहिंसा है। इसपरा कोई कहे कि श्रीभगवान् ने गीता में—नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः—न इसको शस्त्र काटते हैं न अग्नि जलाता है, ऐसा कहा है।" अतः किसी के मारने से आत्मा नहीं मरता है, फिर उस में हिंसा कैसी? यह कहना ठीक है, परन्तु देह के आश्रय से रहनेवाले आत्मा को जीव कहते हैं, और उसको संसार में के सुख दुःखादि भाव होते हैं, इसकारण जीवों को किसी प्रकार का भी दुःख देना हिंसा ही है।मनुजी ने कहा है कि—जो अपने सुख के लिये निरपराधी प्राणियों को दुःख देता है वह दोनों लोकों

में दुःखी होता है। मनुजी ने ऐसा भी कहा है कि--जो दूसरे प्राणी का प्रत्यक्ष वध करता है केवल वही पापी नहीं होता है, किन्तु उस हिंसा में किसी प्रकार का भी सम्बन्ध रखने वाले को पाप लगता है।

अनुमन्ता विशसिता निहन्ता क्रयविक्रयी।
संस्कर्त्ता चोपहर्त्ता च खादकश्चेति घातकाः॥ (मनु ५ अध्याय)

अर्थात हिंसा की संमति देनेवाला, काटकर टुकडे २ करनेवाला प्रत्यक्ष गर्दन काटनेवाला, मांस बेचनेवाला, उसको खरीदनेवाला, पकानेवाला, परोसनेवाला और खानेवाला यह आठों ही घातक (हिंसा के पापभागी) होते हैं। ऐसा सुनकर नईरोशनी वाले मांसप्रेमी लोग कहेंगे कि--हमने प्रत्यक्ष वध थोडे ही किया है!मांस देनालेना पकाना खाना, ऐसा करने में हमको कैसे पाप लगसकता है (Manu was foolish enough to lay down such a rule!!) (तालियें) परन्तु प्रिय मित्रों! आजकल आपके ऊपर जिन नियमों का अमल है और जिन नियमोंपर आपका पूरा विश्वास है उन नियमोंका तत्त्व भी ऐसा ही है, देखो जब कहीं खून होता है तो तहाँ एक मनुष्य पहिले उस मनुष्य को युक्ति से बुलाकर नियत स्थानपर लिवाजाता है, तहाँ लेजाने पर दूसरा पंखे से पवन झलता है, तीसरा बडे आदर के साथ मीठी २ बातें करता है, चौथा निद्रावश करने के लिये उस के ऊपर गुलाब छिडकता है, पाँचवाँभी इसीकारण से सितार आदि मोहक-बाजे बजाता है, सातवाँ उसको निद्रा आते ही तलवार से गला उडा देता है। इसदशा में न्यायाधीश, इन छहोंजनों को कानूनन अपराधी ठहरावेगा या नहीं? अवश्य ठहरावेगा,क्योंकि छहों का एक ही प्रयोजन था। परन्तु यदि कोई अध्यापक (मास्टर) शिष्यको पाठ स्मरण न करने के कारण अथवा उसका दुराचरण देखने पर सन्मार्गपर लाने की इच्छा से उसको ताडना करेगातो दोषी नहीं होगा।

सार यह है Good actions, done with bad motives are bad

and bad 'actions, done with good motives are good अर्थात् पाप वा पुण्य विशेषकर चित्तकीभावना अवलम्बन करकेहोतेहैं। यह सुनकर कोई कहेगा कि—सनातन हिंदूधर्म में हिंसाके ऊपर इतना कटाक्ष है और हिंसाकी इतनी रोक है, इससे तो मुसलमानीधर्म अच्छा है, क्योंकि—उसमें ऐसा निषेध न होनेसे मांसादि का भोजन कियाजासकता है, परन्तु ऐसा समझना भी भूलही है क्योंकि—कुरान में सुरहज आयत ३६ में—

लंइ यनाल अल्लाह लहुमहा दमाहिमा।
ओहा वलेकिन यना लह अत्तक वा मिन्नकुम् ॥

ऐसा कहा है, अर्थात् मांस और रुधिर खुदा (परमेश्वर) को नहीं पहुँचता है (मान्य नहीं है) इसपर यदि कोई प्रतिपक्षी उत्तर दे कि—यह वचन मक्के की यात्रा करनेपर कहा है, केवल उतने ही समय के लिये निषेध है, मक्केको जातेहुए, मुसलमानी धर्मके अनुसार तहाँ कोई छोटासा प्राणीभी यदि किसी के हाथ से मरजायतो पाप लगता है, मक्केकी यात्रा के सिवाय और समय में यह निषेध नहीं है। इस का यह उत्तर है कि—किन्हीं कलक्टर साहबने किन्हीं बदमाशों से यह कहा कि—"अब आगेको तुम्हारा डाकूपन हमारी आँखों के सामने न आना चाहिये" तो क्या इसका यह अर्थ होगा कि—"कलक्टरसाहब की दृष्टि से अलग मार्गोंपर वह बदमाश चाहे जिसप्रकार लूट पाट और खूनखराबा किया करें ?" तैसे ही अमुक स्थान पर हिंसा करें और अमुक स्थानपर न करें ऐसा उस वचनका अर्थ नहीं होसकता किन्तु उससे सब स्थानोंपर ही हिंसाका निषेध समझना चाहिये। इसपर भी यदि कोई मांसाधारी कहे कि—यदि इस धर्म मेंभी निषेध है तो हम क्रिश्चियन (ईसाई) धर्म में चलेजायँगे ? परन्तु वहाँ से भी वह निराशही होकर आवेगा,, क्योंकि—बायबिल में " To what purposeis the multitude of your sacrifices unto me?, said the lord. I am full of the burnt offerings and the fat

of the fed beasts I belight not in the blood of bullocks, or of the lambs or of the goats" (इसाया चाप्टर १) ऐसा लिखा है और इस में अन्त में देव ने, स्पष्टही कहा है कि बैल बकरे या बकरियों के रुधिर से प्रसन्न नहीं होता हूँ। तैसे ही रोमन्स चाप्टर १३ में—"Behold, I have given you every herb bearing seeds and trees yielding fruits, they shall be your meat" ऐसी वनस्पति का आहार करने की आज्ञा देकर मांस का निषेध किया है और आगे 'यह तुम्हारे हाथ खूनसे भरेहुएहैं अतः मैं तुम्हारी बन्दगी स्वीकार नहीं करूँगा,, ऐसाभी कहा है। इसप्रकार संसार के सबही धर्मों में हिंसा का निषेध है, यह बात दिखाई गई और दिखाएहुए शब्दोंका प्रमाण माननेवाले श्रद्धालु पुरुषों को उचित भी प्रतीत हुआ होगा, परन्तु एक पार्टी के पुरुषोंको यह कथन न रुचा होगा उसपार्टीके विषय में मुझे सन्देह है, वह है Free thinkers इसपार्टी के लोग शब्दप्रमाण को नहीं मानते हैं, अतः उनके समाधान के लियेमें और ही प्रकार अर्थात् Natural philosoPhy की दृष्टि से इस विषय का विचार करता हूँ—जगत् में स्वेदज, अण्डज और पिण्डज इन प्राणियों में से पहिले दो अर्थात् खटमल पिस्सू और पक्षी आदिकों से मनुष्यों की समता तो है ही नहीं, अतः इन दोनों से इसविषय में तुलना करना निरर्थक है। अब रहे पिण्डज उन में गौ, बैल, गधा, घोडा, हाथी आदि प्राणी आते हैं और वह घास फूस अन्न आदिखाते हैं मांसभक्षक नहीं हैं, तथा मनुष्यभी अपना जीवन वनस्पति और अन्न से ही बिताता है इस कारण उसको मांसभक्षक कहने का अधिकार नहीं है कोई लोगमन में कहते होंगे कि—Oh! weak point! क्योंकि—अपने प्रयोजनसे मांस भक्षण न करनेवाले प्राणियों की गिनती करके दिखादी (तालियें) परन्तु पिण्डज वर्ग में सिंह, व्याघ्र, काक, कुत्ते, बिल्ली आदि प्राणी

मांसाहारी हैं, उनको क्यों नहीं गिनाया ? उनकी समान मनुष्य भी मांसाहारी होसकेगा। यह कहना ठीक है, दूसरे कितने ही ऐसा कहते होंगे कि-हमगधेमोंकी श्रेणीमें जाना नहीं चाहते (हास्य और तालियें) हम मांसाहारी प्राणियों की श्रेणी में ही हैं परन्तु यह उनका कहनाभी क्षण भर को ठीक मानकर अब इन दोनों वर्गों में से किसवर्गमें मनुष्यों को समझाजाय, इसका निश्चय करतेहैं और ऐसा निश्चय करने से पहिले हम मनुष्य को इनदोनों वर्गों के मध्य में खड़ा करते हैं। कहीं चोरी या खून होजानेपर उसका पता लगाने के लिये उसके समीपके स्थानोंही में तलाशी लीजाती है। एकदेशमें चोरी आदि हो और बहुत दूरके दूसरे देश में उसकी तलाशी हो ऐसा कभी कोई नहीं करता अथवा किसी खेतके मूल्य पर विवाद होजाय तो उस किसान के खेतका ही अन्दाजा करके हाकिम निर्णय करता है, तैसे ही मुख में खाने और पीने के दो काम होते हैं, उसमें से अब खाने के सम्बन्ध का विवाद होनेपर इस काममें पीने की साक्षी लेकर निर्णय करना चाहिये। अब देखना चाहिये कि-गौ आदि और सिंह आदि के पानी पीने की कैसी रीति है ? गौ आदि प्राणी अपने ओठोंसे जल को खेंचकर पीते हैं और सिंहआदि प्राणी अपनी जीभ बाहर जलपर्यन्त लम्बी निकालकर चपचप शब्द करके पीते हैं, अब मनुष्यको किनकी श्रेणी में लेना चाहिये यह स्पष्ट होगया इस पर कोई मांसाहारी मनुष्य कहेगा कि हम अपनी पीने की वस्तु कल से ओठों के द्वारा न पीकर चपचप करके पीलेंगे ?। परन्तु यह कहना असत्य और प्रकृति के विरुद्ध है।

दूसरा प्रमाण यह है कि-मनुष्य के दांत और नखों का आकार गौ आदि और वानरादि के दांत और नखों की समान होता है। डार्विनकी कल्पना को यदि घड़ीभर के लिये मानलियाजाय कि-वानरही अपनी दशासे सुधरतेर मनुष्य बनगया है तो देखो-वह प-

हिली दशा में यदि मांस नहीं खाता था तो अब सुधरीहुई दशा में तो उस को अवश्यही त्यागदेना चाहिये।

तीसरा प्रमाण यह है कि—नेत्ररचनाको देखनेपर भी मनुष्यकी समता गौ आदि के वर्गसे ही होती है सिंहआदि के वर्ग से नहीं होसकती। मनुष्यको दिन में जैसा उत्तमप्रकार से दीखता है तैसा रात में नहीं दीखता, परन्तु सिंह बिलाव आदि हिंसक पशुओंकी दशा इसके प्रतिकूल है अर्थात् उनके नेत्रों को दिनकी अपेक्षा रात में अधिक दीखता है। प्रातःकालके समय उन के नेत्रों की पुतली जैसे२ दिन चढताजाता है, तैसे २ छोटी होतीजाती हैं। मध्यान्हके समय तो रेखा की समान होजाती हैं और दुपहर के अनन्तर जैसे २ दिन घटताजाताहै तैसे ही फिर धीरे२फैलनेलगती हैं और सायंकालके समय पहिली दशापर आजाती हैं। फिर ज्यों२रात होनेलगती हैं त्यों२ वह पूरी गोल होकर उत्तमता से देखनेलगती हैं। परन्तु गौ आदिकोंकी यह दशा नहीं है; इस परीक्षासे भी मनुष्यको गौ आदि के वर्गमें ही गिनना चाहिये।

चौथा प्रमाण यह है कि—परिश्रम से गरमी लगकर जैसे मनुष्यको पसीना आता है तैसेही गौआदि को भी परिश्रम से पसीना आजाता है,परन्तुहिंसक पशुओंमें यह बात नहीं है,इससेभी मनुष्योंकी समता गौ आदिकों से ही होती है। जैसे मनुष्यको पसीना न आनेपर उस की प्रकृति ज्वर आदिके कारण बिगड़ीहुई समझीजाती है तैसेही सिंह आदि को पसीना आनेपर रोगीहुआ समझना चाहिये।

पाँचवाँ प्रमाण—अब कोई शंकाकरे कि—हमारे दो नोंकदार दाँत हैं, उनकी समता हिंसक पशुओं के दाँतों से होसकती है, इसकारण मनुष्यों को हिंसक पशुओं के वर्ग मेंही गिनना चाहिये ? तो इसका यह उत्तर है कि—खाद्य (खानेके पदार्थ) पेय (पीने के पदार्थ) लेह्य (चाटने के पदार्थ) और चोष्य (चूँसने के

पदार्थ) यह चार प्रकार भोजन हैं, इन में बादाम गोला आदि कड़े खाद्य पदार्थों को फोड़कर खाने के लिये ईश्वरने यह दो नुकीले दाँत दिये हैं, मांसभक्षण के लिये नहीं दिये हैं। कल्पना करिये कि-यदि आप बाजारको गये और किसी दुकानपर केला, आम, अंगूर, बादाम, गोला आदि पदार्थ तहाँ धरेहुए देखे और उसी दुकान के एक कोने में एक दो जोड़े जूतेभी पड़ेहुए देखे तो आप उसको जूतों की दुकान कहेंगे या मेवाकी ? मेवा कीही कहोगे; इसी प्रकार यदि २९। ३० दाँत मांसभक्षण के लिये सिद्ध न हुए तो वह दोनो भी तैसे ही हैं और ऊपरोक्त कथन के अनुसार कठिन पदार्थों को फोड़ने के लियेही वह मिले हैं, तथा मांसभक्षण से उनका कुछ सम्बन्ध नहीं है, यह विचार दृढ सिद्धान्त है। इस रीतिपर अनेकों प्रकार से परीक्षा करनेपर मनुष्य मांसाहारी प्राणी नहीं है यही सिद्ध होता है और सत्य है।

इसप्रकार मांसभक्षी मनुष्य को कहीं सहारा न मिलनेपर वह कहेगा कि-देवी के उपासक जो वाममार्गी शाक्त हैं, उनमें मैं चलाजाऊँगा तो मेरानिर्वाह होजायगा ? क्योंकि-उस मत के लोक कहते हैं कि-

> गोमांस भक्षयेन्नित्यं पिबेदमरवारुणीम्।
> कुलीन तमहं मन्ये इतरे कुलघातका ॥

अर्थात् प्रतिदिन गोमांस खाय, अमरवारुणी (मद्य) के दौर उड़ावे वही कुलीन है शेष सब कुलघातक हैं। परन्तु उनकी ऐसी समझ भ्रम से भरी है, क्योंकि-यह श्लोक तंत्र शास्त्रका नहीं किन्तु योगशास्त्र का है और खेचरी मुद्राके विषय में कहा है इसका अर्थ यह है कि-गो कहिये जिह्वा (कोश में देखो गो शब्द के बहुतसे अर्थ होसकते हैं) उसके मांस कहिये कपाल के (तालु के-समीप के) छिद्रमें प्रवेश करने को 'गोमांसभक्षणं' कहते हैं और

पक्का विचार करके वह रात में ही नगर छोडकर वनमें चलीगई और कहीं राजाके पुरुष खोजते खोजते आन जायँ इस भय से प्रकाश होनेपर दिन में गुफा में विश्राम करती थी तथा रात को मार्ग चलती थी, इसप्रकार चलते २ वह दण्डकारण्य में आपहुँची और तहाँ कन्दमूल फल खाकर रहने लगी। एक दिन उस ने वन में विचारा कि- मैंने संसारसुख तो त्याग ही दिया इसकारण अब किसी महात्मा का आश्रय करके परलोक साधना चाहिये। परन्तु क्या करना चाहिये! ऐसा विचारते २ उसको यह युक्ति सूझी कि--इस वन में मातंग ऋषिका आश्रम है तहाँ जाकर उन की सेवा करूं, परन्तु फिर मन में विचारा कि- मैं जाति की अपवित्र भीलनी हूं, अतः ऋषि जी मुझे अपने आश्रम में क्यों आने देंगे? और मुझे उनकी सेवा करनी चाहिये। नहीं तो कार्य सिद्ध नहीं होगा। ऐसा विचार कर उसने प्रतिदिन लकडियों का एक बोझा लाकर प्रातःकाल के समय अँधेरे में ही, जिसप्रकार कोई जान न जाय इसरीति आश्रम में रखआने का प्रारम्भ करदिया और दिनभर ईश्वरका स्मरण करतीरहती थी। इधर आश्रम में के ऋषि आश्चर्य में होगये कि यह प्रतिदिन लकडियों का बोझ कौन डालजाताहै! ऐसा होते२एकदिन शबरी को लकडियें लाने में कुछ देर होगई, उस समय ऋषिका एकशिष्य स्नान को जारहाथा, मार्ग में अन्धकार होनेके कारण उसके सहज में ही शबरी के बेझकी टक्कर लगगई। वह धृष्ट पुष्ट शीघ्रकोपी था। उस ने उसी समय क्रोध आजाने से उस के मुखपर थप्पड मारा, उस चोटसे वह बिचारी मूर्छित होगई; कुछ देरी में सावधान होकर रुदन करती हुई कहनेलगी कि–हे परमात्मन्! मैं कैसी अभागी हूँ कि इस लोक के सुखपर पानी फेरकर वनवासिनी हो महात्मा की सेवा करने कोयहां रहती थी, उस में भी ऐसा विघ्न पडा!! अब यह लोग मेरी सेवा कैसे स्वीकार करेंगे? ऐसा विलाप कररही थी कि–

इतनेही में उस मार्ग से ऋषि स्नान करने को चले, सो उन्हों ने इस की ऐसी व्याकुलता देखकर वृत्तान्त बूझा और फिर धीरज बँधाकर कहनेलगे।कि-पुत्रि ! तू कुछ मत घबडा, प्रसन्नता से हरि नाम का स्मरण करतीहुई हमारे आश्रम में सुख से निवास कर।ऐसा अभय देकर अपनी पर्णकुटी के पीछे उस को एक छोटी सी पर्णटिया बनवादी,वह उस में रहतीहुई ईश्वरका भजन पूजा और ऋषियों की सेवामें अपना समय उत्तमता के साथ बितानेलगी।इधर उस शिष्य ने जो भगवान् के भक्तका ऐसा अपमान किया था इसकारण तहाँ के सबलोगों के जीवन का साधन जो पंपासरोवर था, उसमें का जल बिगड़कर कीडेपडगये और सबको बडाकष्ट होनेलगा, सबलोग इसका कारण खोजनेलगे तब उनके ऊपर कलियुग महाराज का प्रभाव सवार हुआ (प्रत्येक युगमें शेष युगोंका भी अंशरहता है, जैसेकि आजकल कलिकाल होनेपर भी आपसमान तीन चार सहस्र श्रोता एकसाथ सद्धर्म की चर्चा सुनने को इकट्ठेहुए हैं, यह इस युगमें अंशरूप से वर्त्तमान सत्ययुग काही प्रताप समझना चाहिये,अस्तु) उन्होंने ऋषिके समीप जाकर उलाहना दिया कि-जबसे यह स्त्री आपके आश्रम में आई है तबसे ही इस सरोवर का जल बिगडा है, इसकारण अब आप इसको निकालदीजिये, यह सुनकर ऋषि ध्यानावस्थित होकर सरोवर के बिगडने का कारण खोजनेलगे, तब उनको उसका कारण उस शिष्य का शबरी को तिरस्कार करना विदितहुआ और वह शबरी को पुत्रीकी समान समझते थे अतः शिष्य के ऐसा उलाहनादेने से उन महात्मा के अन्तःकरण को बहुत ही दुःख और यह निष्कारण का कलङ्क केवल अतिप्रबल पुरातन चिन्तवन के कारण लगा है ऐसा समझकर उन्होंने अपना पवित्र शरीर योगबल से तहाँही भस्म करडाला और शरीरको भस्मकरते समय शबरी से कहा कि-पुत्री ! तू इस आश्रम में ही

भृकुटी के मध्य में दाहिनी ओर चन्द्रमा से अमृत टपकता है उस को 'अमरवारुणी' कहते हैं। अत इसलिये से 'गोमांसभक्षण' करके जो 'अमरवारुणी' पीता है वह योगी कुलीन (कुलदीपक) है, शेष सब कुलनाशक हैं, ऐसा अमृत पान खेचरीमुद्रा से सिद्ध होता है। जीभ को उठाकर उसको तालु के समीप के छिद्र में प्रवेश करना और दृष्टि को भृकुटि के मध्य में स्थिर करना, इसका नाम खेचरी मुद्रा है। इसमुद्रा के लिये जीभ को बढ़ाने में छेदन, चालन और दोहन क्रिया करनी पड़तीहै, जीभके नीचे की सीवन तीक्ष्ण शस्त्र से पहिले बालभर काटे और आठवें दिन फिर से उपर काटे, ऐसे छ मास पर्यन्त करता रहेतो खाड़ की सीवन टूटकर, जीभको ऊपर छिद्र में प्रवेश करने में जो अटकाव होता है वह दूर होजायगा इसको छेदन कहते हैं। हाथ का अंगूठा और तर्जनी इन के दोनों पोरुओं से जीभको पकड़कर दाईं बाईं ओर को फिरावे, इसको चालन कहते हैं और अंगूठा तथा तर्जनी इन दोनों के पोरुओं से, जीभको जैसे गौको दुहते में उसका थन पकड़कर खेंचते हैं तैसे ही जीभको पकड़कर खेंच २ कर लम्बी करैं इसको दोहन कहते हैं। खेचरी मुद्रा करनेसे योगी अजर अमर होजाता है, यह विषय आज के व्याख्यान का नहीं है इसकारण इसको यहीं छोड़कर प्रकृत विषय में को चलते हैं। पहिले कथन के अनुसार सत्य सनातनधर्म को

(१) गोशब्देनोदिता जिह्वा तत्प्रवेशो हि तालुनि।
गोमांसभक्षणं तत्तु महापातकनाशनम् ॥

(२) जिह्वाप्रवेशसम्भूतवन्हिनोत्पादितः खलु।
चन्द्रात्स्रवति यः सारः स स्यादमरवारुणी ॥ (ह यो प्र)

ऐसा उलट पुलटकर तथा ऐसे नानाप्रकार के उलटे अर्थ करके, स्वार्थ साधने के लिये मायुकनेहुए लोग भोलेभाले अनजान पुरुषों को बहकादेते हैं जिससे कि-वह विचारे घोर पातकों में पड़जाते हैं,

अतःऐसे मनुष्यों से सावधान रहना चाहिये। इसप्रकार अपने धर्म से परधर्मों से और प्रत्यक्ष प्रमाण आदि युक्तियों से सब प्रकार हिंसा का त्याग करना चाहिये, यह बात आज मैंने आपके सामने संक्षेप से कही है। यज्ञ में जो पशुहिंसा करते हैं वह हिंसा होती है या नहीं? यह एक बड़ा गम्भीर प्रश्न है,परन्तु आज अवकाश न होनेसे इसका विचार किसी और समय कियाजायगा।अब अहिंसाधर्मका उत्तम प्रकार से पालन करनेवाले मनुष्य का उद्धार कैसे होता है, इस विषय में एक कथा कहते हैं कि—"पहिले किसी समय, जिसको आजकल नागपूर कहते हैं तिसप्रान्त में, एक भीलराजा था, उसके शवरी नामक एक अतिरूपवती कन्या थी, जब उसकी अवस्था आई तो विवाह की तयारी हुई, राजा के यहाँ विवाह था, इसकारण उसकी जाति के लाखों पुरुषों का समूह होकर भोजन का समारोह होना ही चाहिये था, अतः उस राजाने बकरी आदि सहस्रों जीव मँगवाकर नगर के बाहर इकट्ठे करे (भील मांसाहारी होते हैं यह बात तो प्रसिद्धही है) जब विवाह के दिन समीपही आपहुँचे तो वह कन्या एकदिन अपनी माताके साथ रथ में बैठकर नगर की शोभा देखतीहुई आरही थी। सो नगर से बाहर निकलने पर वह जीवों का समूह उस को दीखा, तब उस कन्या ने बूझा कि—माता! यह इतने जीव क्यों इकट्ठे कियेगये हैं? माता ने उत्तर दिया कि—बेटी! अब तेरे विवाह का समारोह होनेवाला है, उस में मिजवानी के लिये यह इकट्ठे किये हैं, यह सुनकर उस कन्या को बडा खेद हुआ कि मेरे इकले प्राणों के कारण से इतने जीवों का वध होगा!! हर! हर!! इन सबों के संहारका कारण एक मैं होती हूँ! ऐसा विचार करती २ बड़ी व्याकुलहुई और रातको उसे निद्रा न आई, अन्त में उस ने अपने मन में यह ठानालिया कि मैं छुपकर कहीं को चली-जाऊँगी तो आपही विवाह न होने से इनके प्राण बचजायेंगे ते...

पश्चा विचार करके वह रात में ही नगर छोड़कर बनमें चलीगई और कहीं राजाके पुरुष खोजते खोजते आन जायँ इस भय से प्रकाश होनेपर दिन में गुफा में विश्राम करती थी तथा रात को मार्ग चलती थी, इसप्रकार चलते २ वह दण्डकारण्य में आपहुँची और तहाँ कन्दमूल फल खाकर रहने लगी। एक दिन उस ने बनमें विचारा कि-मैंने संसारसुख तो त्याग ही दिया इसकारण अब किसी महात्मा का आश्रय करके परलोक साधना चाहिये। परन्तु क्या करना चाहिये। ऐसा विचारते २ उसको यह युक्ति सूझी कि-इस बन में मातंग ऋषिका आश्रम है तहाँ जाकर उन की सेवा करूं, परन्तु फिर मन में विचारा कि-मैं जाति की अपवित्र भीलनी हूं, अतः ऋषि भी मुझे अपने आश्रम में क्यों आने देंगे? और मुझे उन की सेवा करनी चाहिये। नहीं तो कार्य सिद्ध नहीं होगा। ऐसा विचार कर उसने प्रतिदिन लकड़ियों का एक बोझा लाकर प्रातःकाल के समय अँधेरे में ही, जिसप्रकार कोई जान न जाय इसरीति आश्रम में रखआने का प्रारम्भ करदिया और दिनभर ईश्वर का स्मरण करतीरहती थी। इधर आश्रम में के ऋषि आश्चर्य में होगये कि यह प्रतिदिन लकड़ियों का बोझ कौन डालजाता है? ऐसा होते२एकदिन शबरी को लकड़िये लाने में कुछ देर होगई, उस समय ऋषिका एकशिष्य स्नान को जारहाथा, मार्ग में अन्धकार होनेके कारण उसके सहसा में ही शबरी के वेगसे टक्कर लगगई। वह धृष्ट पुष्ट शीघ्रकोपी था उस ने उसी समय क्रोध आजाने से उस के मुखपर थप्पड मारा, उस चोटसे वह विचारी मूर्छित होगई; कुछ देरी में सावधान होकर रुदन करती हुई कहनेलगी कि-हे परमात्मन्! मैं कैसी अभागी हूँ कि इस लोक के सुखपर पानी फेरकर बनवासिनी हो महात्मा की सेवा करने कोयहां रहती थी, उस में भी ऐसा विघ्न पड़ा!! अब यह लोग मेरी सेवाको कैसे स्वीकार करेंगे? ऐसा विलाप कररही थी कि-

इतनेही में उस मार्ग से ऋषि स्नान करने को चले, सो उन्हों ने इस की ऐसी व्याकुलता देखकर वृत्तान्त बूझा और फिर धीरज बँधाकर कहनेलगे कि–पुत्रि! तू कुछ मत घबडा, प्रसन्नता से हरि नाम का स्मरण करतीहुई हमारे आश्रम में सुखसे निवास कर। ऐसा अभय देकर अपनी पर्णकुटी के पीछे उस को एक छोटी सी पर्णटिया बनवादी, वह उस में रहतीहुई ईश्वरका मनन पूजा और ऋषियों की सेवामें अपना समय उत्तमता के साथ बितानेलगी। इधर उस शिष्य ने जो भगवान् के भक्तका ऐसा अपमान किया था इसकारण तहाँ के सबलोगों के जीवन का साधन जो पंपासरोवर था, उसमें का जल बिगड़कर कीडेपडगये और सबको बडाकष्ट होनेलगा, सबलोग इसका कारण खोजनेलगे तब उनके ऊपर कलियुग महाराज का प्रभाव सवार हुआ (प्रत्येक युगमें शेषयुगोंका भी अंशरहता है, जैसेकि आजकल कलिकाल होनेपर भी आपसमान तीन चार सहस्र श्रोता एकसाथ सद्धर्म की चर्चा सुनने को इकट्ठेहुए हैं, यह इस युगमें अंशरूप से वर्त्तमान सत्ययुग काही प्रताप समझना चाहिये, अस्तु) उन्होने ऋषिके समीप जाकर उलाहना दिया कि–जबसे यह स्त्री आपके आश्रम में आई है तबसे ही इस सरोवर का जल बिगडा है, इसकारण अब आप इसको निकालदीजिये, यह सुनकर ऋषि ध्यानावस्थित होकर सरोवर के बिगडने का कारण खोजनेलगे, तब उनको उसका कारण उस शिष्य का शबरी को तिरस्कार करना विदितहुआ और वह शबरी को पुत्रीकी समान समझते थे अतः शिष्य के ऐसा उलाहनादेने से उन महात्माके अन्तःकरण को बहुत ही दुःख और यह निष्कारण का कलङ्क केवल अतिमलिन पुरातन चिन्तवन के कारण लगा है ऐसा समझकर उन्होंने अपना पवित्र शरीर योगबल से तहाँही भस्म करडाला और शरीरको भस्मकरते समय शबरी से कहा कि–पुत्री! तू इस आश्रम में ही

रहती हुई भगवत्सेवा करतीरहना तेरी इच्छा के अनुसार श्याम-सुन्दर कमलनेत्र धनुर्धारी श्रीरामचन्द्रजी एकसहस्र वर्षोंके अनन्तर यहाँ आकर तुझको दर्शन देंगे, यह सुनकर शबरी को बड़ा आनन्दहुआ और मुझको श्रीरामचन्द्रजी का दर्शन होगा, ऐसीआशा रखकर पहिले से भी अधिक दृढ़ता के साथ भगवद्भक्ति करनेलगी। जब श्रीरामचन्द्रजी के आनेके दिन बहुतही समीप आगये तब उस को उन्हीका ध्यान रहनेलगा और आज श्रीरामचन्द्रजी आवेंगे,कल आवेंगे ऐसी आतुरता से बाट देखने लगी और उस ने भगवान् के लिये कुशों का आसन बनाया उस को बारम्बार धोतीथी और स्वच्छ करके रखती थी, तिसीप्रकार प्रभुको भेट समर्पण करने के लिये सुन्दर २ बेर लाकर दोनो में भरकर रखलिये और बेर खट्टे न हों इसकारण शुद्धप्रेम के साथ उनको अपने दाँतों से कुतर२ कर जितने मीठे २ थे वह एक ओर को अलग दोने में भरकर रखलिये। ऐसा करते २ मध्य में ही वहम करके कि—श्रीरामचन्द्र जी मुझ गरीबनी के यहाँ भला क्यों आने लगे हैं ! नेत्रों मे से आँसू बहाने-लगी और फिर विचारने लगी कि -ऋषियोंका कहना मिथ्या नहीं होसकता, ऐसा होते २ जैसा बताया था उसी नियमित समयपर भगवान् श्रीरामचन्द्र जी,सीताजी और लक्ष्मणजी केसहित दण्डका-रण्य में आकर उस आश्रम के समीप आये,इधर शबरी भी,टकटकी बाँधेहुए भगवान् के आने की बाट देखतीहुई बैठी थी। इतने में श्रीरामचन्द्रजी की श्यामसुन्दर कमलनयन मूर्त्ति दृष्टि पड़ी, तब रस कंठ भर आया और नेत्रोंमें से प्रेमाश्रुओं की धारें बहने लगीं भगवान् श्रीरामचन्द्र जी माता शबरी ! ऐसा सम्बोधन करके बड़े प्रेम के साथ मिले, जो मातृप्रेम उन्होंने कौसल्या के साथ वर्त्ता था उसी मातृप्रेमके साथ शबरीसे मिले उसप्रेमकी गड़बड़ीमें शबरी श्री रामचन्द्र जी के बैठने के निमित्त बनाई हुई चटाई भी बिछाना भूल

गई, शुद्धप्रेम की ऐसी ही दशाहोती है। तदनन्तर विशेषकर तेरे निमित्तही मैं इस आश्रम में आयाहूँ, ऐसा कहकर श्रीरामचन्द्रजी ने उसको नवधाभक्ति सुनाई, उसने प्रभुको वह छाट २ कर अलग रक्खे हुए बेर समर्पण करे, भगवान् ने उनको बड़े आनन्द के सायखाया। एक दोना भरकर लक्ष्मणजी कोभी दिये थे, परन्तु उन्होंने वह शबरीझूठे और अशुद्ध समझ श्रीरामचन्द्रजी की दृष्टि से बचाकर दोना वैसा का वैसाही फेंकदिया, वह हिमालय पर जाकर गिरा और उसका द्रोणाचल बनकर उसपर उनबेरों से मृतसंजीविनी बूँटी उत्पन्न हुई। नई रोशनीवाले सुधारक लोग कहेंगे कि–Impossible (तालियें) परन्तु यह अशक्य नहीं है, शेषजी का अवतार होने के कारण लक्ष्मणजी का पराक्रम ही ऐसा था, परन्तु उस समय का ऐसा कार्य आजकल की अल्पवीर्य अल्पसत्व प्रजाको अशक्य प्रतीत होतो इस में आश्चर्य ही क्या है ?। श्रीरामचन्द्रजी ने विचारा कि–शबरी के जूठे बेरजानकर लक्ष्मणजी ने मेरे भक्तका ऐसा अनादर किया है इस कारण इनको किसी समय,मैं यही बेर खवाऊँगा, अतएव जब मेघनाद से युद्ध होते२ लक्ष्मणजी के शक्तिलगी तब महावीरजी ने द्रोणागिरि लाकर उसपर की संजीविनी बूँटीका रसनिचोड़ लक्ष्मणजी के मुखमें डाला तब वह सावधान होकर फिर युद्ध करने को खड़ेहोगये। भक्त के ऊपर प्रभु ऐसाही प्रेम करते हैं, फिर भगवान् रामचन्द्रजी के आनेका समाचार मातंग ऋषिके आश्रम में रहनेवालों ने सुना, तब उन्होने विचारा कि–अहल्या सहस्रों वर्षसे शिला बनी पड़ी थी उसका उद्धार श्रीरामचन्द्रजी ने अपने चरणों के रजसे किया अतः इस पम्पासरको भी वह अपने चरण के रजसे शुद्ध करदेंगे, ऐसा विचार भगवान् के समीप जाकर उन्होने प्रार्थनाकरी कि–हे भगवन् ! आप इस जलको अपने चरणरज से शुद्ध करदीजिये। यह सुन श्रीरामचन्द्रजी ने 'बहुत अच्छा' कहा और कमर २ जलमें जाकर खड़ेहोगये परन्तु

वह जल शुद्ध नहीं हुआ, यह देखकर उन ऋषिके शिष्यों के मन में सन्देह हुआ कि–यह श्रीरामचन्द्रजी शबरी के भ्रष्ट आश्रम में गये थे, इसकारणही जलको शुद्ध नहीं करसके हैं, तब श्रीराम चन्द्रजीने कहा भाई! जबतक बिगड़नेका कारण ठीक२मालूम नहीं होगा तबतक वह जलशुद्ध नहीं होगा। तब उस आश्रम में का एक बूढ़ा कहनेलगा कि–महाराज जिसदिन हमारे गुरुभाई ने शबरी के मुखपर प्रहार किया था उसीदिन से इस सरोवर का जल बिगड़गया है, इतना मुझे मालूम है, यह सुन श्रीरामचन्द्रजी ने कहा कि–यदि ऐसा हो तबतो इसका एक छोटासा उपाय है, एक कमण्डलु में जललाओ उसमें शबरी के चरणका अंगूठा धोकर वह जल इस सरोवर में डालदो बस यह शुद्ध होजायगा। ऐसा करते ही उस सरोवर का जल तत्काल शुद्धहोगया। यह देख उन शिष्यों को बड़ा आश्चर्य हुआ और वह उस दिनसे शबरीकी सेवा करनेलगे। इसप्रकार भगवान् श्यामसुन्दर अवसर आनेपर भक्तकी महिमा अपनेसे भी अधिक बढ़ाकर दिखातेहैं। भगवान् को स्वयं संसार की किसी बातसे भी कुछ प्रयोजन नहीं है, तथापि वह अपने भक्तों के निमित्त अनेकों अवतार धारकर उनका कल्याण करते हैं। श्रीरामचन्द्रजी को 'मर्यादापुरुषोत्तम' अवतार कहते हैं, क्योंकि–उन्होंने नीतिमर्यादा का पूरा २ चित्र दिखाया,यह बात रामचरितपर दृष्टि डालनेपर सहजमेंही समझमें आजायगी। सार यह है कि–शबरी को दर्शन देनेके लिये स्वयं भगवान् उसके आश्रम में आवें, ऐसी योग्यता पाने के लिये उसका पहिले आचरण कियाहुआ अहिंसा धर्म ही कारण हुआ। ऐसा समझकर सबको अहिंसाधर्म का पालन करना चाहिये, जिससे इसलोक और परलोक में कल्याण होगा॥

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः।

चौथा व्याख्यान।

विषय-सन्ध्या से आयुकी वृद्धि।

करचरणकृतं वा कायजं कर्मजं वा श्रवणनयनजं वा मानसं वापराधम्।
विदितमविदितं वा सर्वमेतत्क्षमस्व, जयजय करुणाब्धे सच्चिदानन्दविष्णो॥

हमारे सभासदों के हृदयरूप आकाश में सनातनधर्मरूपी मेघमण्डल ऐसा उमड़ा है कि-सर्वत्र विद्यारूपी बिजलियें चमकरही हैं और कल्याणरूपी कोकिला कूक शब्द कररही है। आशा है कि-थोड़े ही समय के अनन्तर रकार-मकाररूपी सावन भादोंके महीने में हरयशोरूपी जलकी वर्षा को देखकर हमलोग अपने शरीररूपी बगीचीमें एक ऐसा झूला डालेंगे कि-एकाग्रता ही जिसकी पटली है इडा पिंगला सुषुम्ना और वज्रा यह चार रस्सियें या अंगोरें हैं और प्राण अपान यह दोनों दोनोंओर से झोंके देरहे हैं और जिसपर बैठकर हम सब हरिनामरूपी गीत को गाते हैं-' हरेराम हरेराम राम राम हरे हरे। हरेकृष्ण हरेकृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।' (सब लोग ऐसी ही ध्वनि लगाते हैं)।

पिछले व्याख्यान में सन्ध्याकी महिमा और अहिंसा सत्य आदि ब्रह्मविद्या के अंगों के विषय पर आपने व्याख्यान सुना ही है, उससे आप को निश्चय होही गया होगा कि-ब्रह्मविद्याको साधन करनेका अधिकार केवल मनुष्यको ही हैं, पशु आदि को नहीं है, क्योंकि उनको बुद्धि नहीं होती है, मनुष्य का जन्म केवल इसलोक के सुखों को भोगने के लिये ही नहीं है, किन्तु उसको ब्रह्मज्ञानरूपी हीरेकी प्राप्ति करना आवश्यक है। विषयादि सुख तो पशुओं के और मनुष्यों के, अधिक क्या देवताओं के भी एक से ही हैं। परमरूपवती और भूषणादिसे शोभायमान इन्द्राणी से जो विषय का आनन्द इन्द्र को मिलता है वही विषयानन्द कीचमें सनीहुई शूकरी से शूकरको मिलता है, कहा है कि-

आहारनिद्राभयमैथुनं च सामान्यमेतत्पशुभिर्नराणाम् ।
ज्ञानं नराणामधिको विशेषो येनेन हीनाः पशुभिः समानाः ॥

इसप्रकार मनुष्य में ज्ञान ही विशेष बात है, मनुष्यको अपने शरीर की सफलता करने के लिये, मैं कौनहूं ? कहाँ से आया हूं ? मुझको क्या करना चाहिये ? यह विचार करना आवश्यक है । मनुष्य में स्थित यह बुद्धि की श्रेष्ठता नवीन पदार्थविज्ञान आदि शास्त्रोंसे भी सत्य सिद्ध होती है । देखो—आपने यदि एकसमान आकार के एक हीरेका और एक काँचका ऐसे दो टुकडे लिये तो उनमें हीरेके टुकडेका भारीपन अधिक होगा, क्योंकि—उस के परमाणु काँच के टुकडे के परमाणुओं की अपेक्षा बहुत अधिक समीप २ अर्थात् घने हैं । इसीप्रकार पशु आदिकों के मस्तक चाहे मनुष्योंके मस्तकों से बडे दीखते हों परन्तु तोल में बहुत हलके होते हैं, इसकाकारण यह है उन के मगज में बुद्धि का साधन बहुत कम है । किसी पशुका तत्काल उत्पन्न हुआ बच्चा यदि जल में तैरता होतो उस के सब शरीर के और भाग जल के भीतर रहकर केवल मस्तक ही जल के ऊपर तैरता रहेगा परन्तु मनुष्य के बच्चे का मस्तक इसप्रकार ऊपर नहीं रहसकता वह तो नीचे पानी में ही जाता है, इससे उसका अधिक भारी होना स्पष्ट ही है । मनुष्य किसी ऊंचे स्थानसे नीचे गिरे तो वह खडाका खडा ही पैरों के बल नहीं गिरता किन्तु नीचे को सिर ऊपर को चरण होकर गिरता है । और मनुष्यका जन्म होने के समयभी पहिले मस्तक ही बाहर आता है परन्तु पशुओं के जन्म समय में इसके विपरीत पहिले पिछला भाग बाहर आता है इस से भी मनुष्य के मस्तक का भारीपन सिद्ध होता है अर्थात् मनुष्य के मस्तक की रचना ही ऐसी है कि उस में सब प्राणियों की अपेक्षा विशेष ज्ञान रहे । मुसलमानों में भी औरों की अपेक्षा मनुष्य में ' तमीज ' अधिक माना है । अंग्रेजी में भी मनुष्य की Reason (बुद्धि—विचारशक्ति) और

पशुओंको Instinct (जन्मते ही स्वाभाविक बुद्धि) होती है ऐसा माना है । इसप्रकार मनुष्य,ज्ञान के कारण सब प्राणियों की अपेक्षा श्रेष्ठ हैं इतना सिद्ध करनेपर अब मैं अपने वर्णनीय विषय की ओर चलता हूं । मनुष्यों में जो बुद्धि कही है उसको परिपक्व करने के लिये हमारे पुरातन महर्षि तथा और लोगभी बडा कष्ट उठाते थे अर्थात उस समय के पुरुष यज्ञोपवीत संस्कार होने अनन्तर ४८ । ३६ । २४।कम से कम १२ वर्ष पर्यन्त ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करते थे इसी कारण बडे २ शक्तिमान् और ज्ञानवान् होते थे परन्तु आज कल ४८वर्षकी अवस्थामें प्रायः चार पांच सन्तानआदिसे युक्त गृहस्थ होकर बहुतसों के तो मरजाने की पारी आजातीहै । इसकाकारण यह है कि नैष्ठिक ब्रह्मचारियों को पहिले सन्ध्या और उस के अंगरूप प्राणायाम आदि का चिरकालपर्यन्त अभ्यास करने से जो लाभ होता था उस लाभकी ओर अब लोगों की दृष्टि नहीं है इसकारण बडीभारी हानि होरही है । आशा है आपलोग परम उपकारी प्राणायाम आदि विषयों की ओर अवश्य ध्यान देंगे ।

आयु की वृद्धि कैसे होगी इस प्रश्नका उत्तर देने के पहिले आयु क्या वस्तु है इसका विचार करना उचित है । साधारण लोगों ने ऐसा समझरक्खा है कि अमुक वर्षमें चैत्र या और किसी महीनेके शुक्ल या कृष्णपक्ष में अमुक तिथि को जन्म या मरण होगा यदि ऐसा संकेत परमेश्वर कर रखता है तो वह नियमित समयही आयु है ! परन्तु यह ठीक नहीं है परमेश्वरके यहां इस प्रकारका कोई रजिस्टर नहीं है हरएक प्राणी को अपने २ पाप पुण्य के अनुसार एक जन्म में जितना सुखदुःख आदि फल भोगने में जितना समय लगैगा उतने ही श्वास परमेश्वर उस प्राणी में रखता है,उसीको आयु कहते हैं । मनुष्य २४ घण्टे या ६० घडी में २१, ६०० श्वास लेता है इस हिसाबसे हरएक के कर्मानुसार किसी में दस करोड किसी में

दो करोड़ किसी में करोड़ किसी में चार लाख किसी में दसलाख इस प्रकार श्वास दिये हैं। श्वासकी स्वाभाविक गति यह है कि बैठने की दशा में श्वास शरीर से बाहर नासिका से १२ अंगुल लम्बाई पर्यन्त जाता है परन्तु मार्ग चलने में १८ अंगुल लम्बा जानेलगता है सोते समय ३६, कोधित होनेपर ९७, और मैथुन के समय १०८ अंगुल की लम्बाई पर्यन्त जाता है अर्थात् भिन्न२ प्रमाणों से श्वासों का खर्च होता है अतः जिस दशा में अधिक खर्च हो उस अवसर को जितना टाला जायगा उतनी ही आयु की वृद्धि होगी यह बात सिद्ध होगई इसकारणही बालकों को माता अधिक निद्रा न लेने के विषय में जो उपदेश करती हैं वह सन्तानकी अति हितकारिणी है। वैद्यकशास्त्र इसके विरुद्ध कहता है मनुष्यको जैसा भोजन हो वैसी ही निद्रा अवश्य लेना चाहिये। ऐसाही लोगों का अनुभवभी है तथा धर्मशास्त्रभी कहते हैं—" नापुत्रस्य लोकोस्ति " ऐसी श्रुति है इसकारण स्वर्ग पाने के लिये पुत्र उत्पन्न होना चाहिये। साधारणरीति से देखनेपर ऐसे शास्त्रवाक्य उपरोक्त सिद्धान्त के विपरीत दीखते हैं अतः इनकी एकवाक्यता कैसे हो ? यह शंका ठीक है परन्तु आगे के विचारसे नहीं ठहरसकेगी परमेश्वर बड़ा दयालु है उसने हरएक वस्तु की रचना परम चतुराई से करी है। एकबार अपने शरीर की रचना की ओर देखो—जब हम स्नान करते हैं उस समय मस्तकपर का जल नेत्रों में न जाय इसलिये कपाल को कुछ ऊँचा रखा है, और ऊपर से कदाचित् जल आही जाय तो उस के रोकने के लिये पलक बनादिये। कानों की रचनाभी ऐसी ही चतुराई से करी है, एकाएकी कानों में पानी न चलाजाय

१ यह प्रमाण दूसरे किन्हीं ग्रन्थों में औरही प्रकार से कहाहै परन्तु ऊपर बताईहुई दशाओं में अधिक होता है तात्पर्य सब का यही है।

इसलिये उस में पाली बनादी है। बालक को उत्पन्न होते ही उस की क्षुधा के अनुसार दूध माता के स्तनों में से उस को मिलजाय ऐसी स्तनों के छिद्रों की रचना पहिलेसे ही रहती है फिर जैसे२ वह बड़ा होता है और उसकी भूख बढती है तैसे२ स्तनोंके छिद्र माता के प्रेम से बढतेजाते हैं, ऐसेही हरएक विषय में ईश्वरकी उत्तम योजना को जब हम देखरहे हैं तो आयु के विषय में भी ऐसी ही व्यवस्था होनी चाहिये कल्पना करो कि परमेश्वर ने प्रतिदिन के २१,६०० श्वासों के हिसाबसे १०० वर्ष की आयु हमें दी है परन्तु हमने उसको सावधानी के साथ खर्च न करके यथेष्ट लुटाया है, इसमें परमेश्वर का क्या दोष है ? जैसे किसी धनी के पुत्र को उस के बडे एकलाख रुपये की जायदाद छोड़गये हों और उस पुत्र को यदि नवीन धन उत्पन्न करने की शक्ति या बुद्धि न हो तो वह धन का खर्च सोच समझकर प्रबन्ध के साथ करे,ऐसा न करके यदि वह उद्धतपने से करेगा तो थोडे ही दिनों में उसका ऐश्वर्य नष्ट होकर वह भीख मांगनेलगेगा और हाथ रोककर खर्च करेगा तो वह पहिलाही धन उसको बहुत दिनों के लिये पर्याप्त होगा। इसीप्रकार परमेश्वरके दियेहुए श्वासों को जितनी कमी के साथ अपने खर्च में लायाजायगा उतनी अपनी आयु बढेगी अर्थात् प्रतिदिनके २१, ६०० श्वासों मेंसे यदि कुछ कम श्वास खर्च होंगे तो वह इकट्ठे होकर हमारी आयु सौवर्ष से अधिक बढ़जायगी। अब स्वाभाविकही प्रश्न उठता है कि इसप्रकार श्वासों के कम खर्च होने का कौनसा उपाय है ?

उत्तर यहहै कि प्राणायाम सर्वोत्तम उपायहै और उस प्राणायाम को सीखने की आवश्यकता सन्ध्यामें ही है इस कारण सन्ध्याही आयु बढनेका साधन है यह बात स्पष्ट सिद्धहोगई। अब कितने समय तक प्राणायाम करने से कितनी आयु बढती है इसका विशेष विचार

करते हैं, दिनरात के २४ घंटे समय में मनुष्य के २१,६०० श्वास होते हैं यह बात पीछे कह आये हैं जिसको २४ घंटेतक अपने प्राणों को रोकना आता है वह परिपक्व अभ्यासवाला योगी यदि रात दिन के २१,६०० श्वासोंमें से एकही श्वास खर्च करने का अर्थात् आज सूर्योदय के समय कुंभक करके कलको सूर्योदय के समय छोडने का निश्चय करै तो २१,६०० श्वास उसको २१,६०० दिनतक पर्याप्त होंगे अर्थात् उसकी एक दिन की आयु ६० वर्ष पर्यंत बढेगी। इससे आधी अर्थात् जिसकी शक्ति १२ घंटे प्राणायाम करने की है उसकी एक दिन की आयु ३० वर्ष, जिसकी शक्ति एक घंटा प्राणायाम करने की है उसकी एक दिन की आयु ढाई वर्ष, और एक मिनट प्राणायाम करनेवाले की एक दिन की आयु पन्द्रह दिन पर्यंत बढेगी यह ऊपर के हिसाब से सिद्ध होता है । कोई मनुष्य कितनाही दुर्बल हो आरंभ में एक मिनट का प्राणायाम करने में कुछ अडचन नहीं पडेगी । बहुत छोटाबालक ३० सेकेंड पर्यंत अपने प्राणोंको सुखपूर्वक रोकसकता है , तब बडे मनुष्यको तो एक मिनट का प्राणायाम सुसाध्य है फिर उसको अभ्यास करके वह प्राणायाम करने की शक्ति बढालेना चाहिये । श्रद्धा और दृढता के साथ अभ्यास करनेवाला होतो एक घंटेपर्यंत कुंभक करने की शक्ति होने में कमसे कम ६ । ७ वर्ष लगते हैं । यदि आपकी इतनी भी शक्ति न होतो सन्ध्या में कमसे कम ३ प्राणायाम कहे हैं यदि आप वह भी करते रहें तो आपकी आयु २१ दिन बढजायगी । प्राणायाम पूरक,कुंभक,और रेचक ऐसे तीन प्रकारका है। बाहर चलनेवाले वायुको खेंचकर पेटमें भरलेना पूरक,खेंचेहुए वायुको कुछ नियमित समय तक भीतर रोक रखना कुंभक,और पेटमें रोकेहुएवायुको धीरे धीरे बाहरको छोडना रेचक कहाता है । (अर्थात् प्राणोंका आयाम कहिये कहिये निरोध प्राणायामहै । मुख्यरूपसे प्राणायाम शब्द का अर्थ कुंभमें

मोहुए जलकी समान प्राणायाम करनेवाला शरीर में शान्त और निश्चल रहता है इसकारण उसको कुम्भक कहते हैं कुंभक को सिद्ध करने में पूरक और रेचक की सहायता होती है। कुंभक दो प्रकार का है एक केवलकुंभक दूसरा सहितकुंभक, रेचक और कुंभकको बिना करे एक उद्योग से सुखके साथ जो प्राणों का निरोध होता है उसको केवल कुंभक कहते हैं और रेचक तथा पूरक की सहायता से जो प्राण निरोध होता है उसको सहितकुंभक कहते हैं। केवलकुंभक की सिद्धिहोने पर्यन्त सहितकुंभक करना पडता है। पूरक आदि प्राणायाम करने में सिद्ध आदि आसन और मूलबंध आदि मुद्राओं से उत्तम सहायता मिलती है इसका वर्णन हठयोगप्रदीपिका में विस्तारके साथ कियाहै) गायत्रीके तीन अंशहैं पहिला व्याहृति, दूसरा गायत्रीमंत्र और तीसरा शिरोभाग। पूरक कुंभक और रेचक करते में क्रमसे इनतीनों अंशों को एक २ बार कहना एक मात्रा प्राणायाम या कनिष्ठ प्राणायाम है, पूरक कुंभक और रेचक करते में क्रमसे उन अंशों को दोबार कहना दोमात्री का प्राणायाम या मध्यम प्राणायाम है, और क्रमसे उनअंशों को तीनवार कहना

---

१ यहाँ मात्रा शब्द से उद्घात समझना चाहिये। उद्घात कहिये नाभि कमल से प्रेरित हुआ जो वायु उसका मस्तक में जाकर टकराना उद्घातहै एक उद्घात का कनिष्ठ, दो का मध्यम और तीन का उत्तम प्राणायाम कहाहै। बहुतसे ग्रन्थों में बारहमात्रा का एक उद्घात अथवा कनिष्ठ प्राणायाम, चौवीसमात्रा का मध्यम और छत्तीसमात्रा का उत्तम प्राणायाम होता है ऐसा भी कहा है। परन्तु यहाँ मात्रा शब्द से साधारण चुटकी बजाने में जितना समय लगता है उसको ही लिया है। सार यह है कि—किसी प्रकार हो ४२ विपल का कनिष्ठ ८४ विपल का मध्यम और १२५—१२६ विपल का उत्तम प्राणायाम होता है, इस को सब मानते हैं।

तनिमात्रा का प्राणायाम या उत्तम प्राणायाम है ।

पूर्वकाल में महर्षि लोग इस रीति से अपनी आयु को बढाकर हजारों वर्षतक जीते रहते थे और बडे २ राजे भी चार २ छः २ घडी तक प्राणायाम करके दीर्घायु होतेहुए अपने राज्य का काम बडी सावधानी के साथ देखते थे और अपनी शूरता के बल से शत्रुओंको चरण के तले दबाकर रखते थे । परन्तु वह रीति नष्ट होकर आजकल सन्ध्या कैसे करना चाहिये और प्राणायाम क्या वस्तु है? इन सब बातों को हम भूलगये, इसकारण हमारी आयु की रातदिन हानि होती रहती है । संसार के अनेकों कष्ट और विषयों के सुख आदि में जो श्वासों का अधिक खर्च होता है उसको पूरा करने का साधन संध्या ही है, अर्थात् दिन में व्यावहारिक विषयों की सिद्धि के लिये जो अनेकों कष्ट उठाना और दौड धाम करनी पडती है उस में होनेवाले श्वासों के खर्च को सायंसन्ध्या से और रात्रि के समयनिद्रा विषयसुख आदि में होनेवाले खर्च को प्रातःकाल की संध्या से पूरा करने की योजना हमारे शास्त्रकारों ने लिखी है । विषयादि को नियम के साथ सेवन करके सन्ध्या में प्राणायाम अधिक करने का उद्योग करने पर अपने श्वास अधिक इकट्ठे होकर उन्हीं के अनुसार आयु की वृद्धि भी होगी । सार यह है कि आयुर्वेद, धर्मशास्त्र, और योग शास्त्र यह परस्पर किसी प्रकार भी विरुद्ध नहीं हैं यह सब आपके ध्यान में आहीचुकी होगी । जैसे घडी की कमानी ढीली होजानेपर हम चाभी देकर उसकी शिथिलता को दूर करते हैं तैसे ही प्रमाण से अधिक श्वासोंका खर्च होनेसे आयुमें आईहुई शिथिलता को हमेशा प्राणायामरूपी चाभी देकर दूर करना चाहिये । आयु की वृद्धि होने के लिये प्राणायाम विधिपूर्वक होना चाहिये नहीं तो लाभके बदले हानि होना संभव है । कितने ही पुरुष पुस्तकों में प्राणायाम की रीति पढकर उसका ठीक २ अर्थ विना समझे ही मनमाना अनुष्ठान करते

हैं अर्थात् बाहरकी वायुको नासिकाके एक नथुनेमें को ओर से खींचकर उसको मस्तकमें लेजातेहैं और दमकोघोटतेहैं तथा दूसरे नथुनेसे छोडदेते हैं परन्तु यह प्राणायामकी ठीक रीति नहींहै। ऐसा करनेमें बाहरसे खैंचा हुआ वायु मस्तक में जाकर टकराता है उस से बार २ भेदे में धक्का लगकर मनुष्य विक्षिप्तसा होजाता हैं यह वही कहावत हुई कि—" लेनगई पूत खोआई खसम " भगवद्गीता में,—अपाने जुह्वति प्राणं प्राणेऽपानं तथा परे ' इत्यादि संक्षिप्त वचन में प्राणायामकी रीति कही है परन्तु कितनों ही को नासिका के छिद्रों का किससे सम्बन्ध है यह कुछ मालूम नहीं है। फिर इस वचनका ठीक अर्थ कैसे मालूम हो? बाहरसे खींचेहुए प्राणवायु का मूलाधारसे मूलबन्धके द्वारा उठाएहुए अपानवायुसे संयोग करके और उस को सुषुम्नामें लेजाकर.उस के द्वारा ब्रह्मरन्ध्र में पहुँचाना यही गीताके उस वचनका रहस्य है जिसको ठीक२ समझने के लिये गुरु की शरण लेना चाहिये। गुरुके विना ठीक मार्ग नहीं मालूम होता। और इस लिये ही हमारे शास्त्र में गुरुकी महिमा कही है जब साधारण व्यवहारकी विद्याओं के लिये गुरु चाहिये तो फिर ऐसी ब्रह्मविद्या समान गुरुकी कृपासे ही प्राप्त होनेवाली विद्या के लिये गुरुकी अपेक्षा नहीं है ऐसा कौन कहसकताहै? प्राणायाम कैसे करनी चाहिये इस विषय में कुछ अनुभव की हुई विशेषबात कहने की मेरी इच्छा है परन्तु इससमय केवल मुखसे कहदेने में उस से

---

१ एक एडी से योनिस्थान अर्थात् सीवन को दाबकर और गुदाके द्वार को संकुचित करके अपान वायु की नीचे की गति को ऊपर को खींचकर चलाना मूलबन्ध कहाता है।

२ सामवेद के छान्दोग्य उपनिषत् में कहा है आचार्य अर्थात् गुरुसे योगरीति का सब रहस्य जानकर अभ्यास करने से पुरुष अपने आपही सिद्धि और आनन्द को पाता हैं।

कोई काम नहीं पहुँचेगा अत अवकाश मिलने पर उस के लिये एक स्वतन्त्र समय और स्थान नियत करके प्राणायाम के विषय की कुछबातें प्रत्यक्ष करके दिखाउंगा और गुरुकी कृपा से मिलीहुई कुछबातें भी कहूँगा।

इस प्रकार प्राणायाम और आयुकी कितनी समीपता है यह बात स्पष्ट दिखाकर उसके साथ में और भी बहुत सी आवश्यक बातेंकहीं अब इसपर भी यदि कोई कहे कि और क्या है और क्या है ? तो उसको उत्तर देना कठिन है उसका समाधान करने के लिये तो जैसा एक धूर्तता की कहानी कहनेवाले ने राजा के साथ किय। वैसाही करना चाहिये। एक समय एक राजाको कहानियों सुनने का बडा-शौक हुआ, कहानी कहेनेवाला थकजाय परन्तु इसकी फिर फिर (और और) समाप्त नहीं होती थी और जो कहानी कहनेवाला कहते २ थकजाता था उसको यह जेलखाने मेंभदेता था ऐसे सैकडों मनुष्य कैद में पडेहुए थे अतमें एक धूर्त्त मनुष्य ने निश्चय किया कि–किसी युक्ति से राजाको चुप करूंगा परन्तु मैं हारकर नहीं आऊंगा वह राजा के पासगया और कहानी कहनेलगा कि एक जगह एक पोस्तका कोठा भरा था उसमें से एक टीड़ी एक दाना-लेकर फुर्र होगई, राजाने कहा फिर ? कहानी कहनेवाले ने कहा दूसरी आई वहभी एक दानालेकर फुर्र होगई। राजाने कहा फिर उसने कहा तीसरी आई वह भी एक दानालेकर फुर्र होगई इसप्रकार बहुतदेर तक फिर और फुर्र होती रही तब राजाने कहा अरे यह तेरी फुर्र कभी समाप्त होगी या नहीं ? इस पर उसने कहा कि महाराज जब आपकी फिर समाप्त होगी तभी मेरी फुर्र समाप्त होगी, क्योंकि जब सब टीडियें पूरी होजायँगी तभी तो मैं आगे चलूँगा तव तो राजा निरुत्तर होकर कहनेलगा कि बाबा ! तूने मुझे हरादिया। अब इनाम माग ! उसने कहा जितने कहानी कहनेवाले कैद पडे हैं उन को छोड़दीजिये बस: यही मेरे लिये इनाम है।

एक गृहस्थ विधिपूर्वक प्राणायाम करता था, तथापि कभी कभी वह चूकजाता था; इसका कारण यह था कि-प्राणायाम करने का अधिकार मिलने के साधनरूप, अहिंसा ब्रह्मचर्य आदि धर्मोंका पालन उससे ठीक २ नहीं बनताथा। जिसको प्राणायामका ठीक२ फलपाने की इच्छा हो उसको, अहिंसा ब्रह्मचर्य आदि नियमों की ओर अवश्य ध्यान रखनाचाहिये। योगविद्या में ब्रह्मचर्य व्रत की अत्यन्त ही आवश्यकता है, यदि ब्रह्मचर्य न होतो सब निष्फलहै। जिसकी अधिक अवस्था होगई हो उसको पिछली बातका पश्चात्ताप न करके आगे की दशा सुधारने के लिये जहातक होसके उपरोक्त नियमों के अनुसार चलना चाहिये, ऐसा करने से उसको थोड़ा बहुत लाभ तो अवश्य ही होगा, नहीं तो अपनी सन्तान को सुधारने के लिये तो अवश्यही ध्यान रखना उचित है। योगविद्या तो दूर रही किन्तु आजकल लोग जो नानाप्रकार की व्यवहार सम्बन्धी विद्याएँ सीखते हैं, उनका भी ठीक २ आराधन नहीं होता, इसकारण उन व्यवहारिक विद्याओं को यथोचित रीति से पाकर और बड़ी २ परीक्षाओं के पारहोकर भी दरिद्रदशा में रहनापड़ता है अथवा बहुत समय पर्यन्त नौकरी आदि के लिये धक्केखाने पड़ते हैं। विद्याका आराधन अर्थात् जिन गुणों से विद्या की शोभाबढ़े उन सबका आदर के साथ पालन करके विद्याको सीखना यह बात आजकल के विद्यार्थियों के आचरण में किञ्चिन्मात्र भी देखने में नहीं आती। आजकल के विद्यार्थी, माता--पिता तथा अपने अन्य बड़ोंका तिरस्कार करते हैं; व्यभिचार, मद्यपान आदि दुर्व्यसनों में निमग्न रहते हैं अर्थात् विद्यादेवी को अपने सद्गुणों से भूषित न करके उलटा उसको अपने दोषों से दूषित करते हैं, फिर वह प्रसन्न कैसे हो? और उसके द्वारा धन कैसे मिले ?। विद्यापढ़ने कीभी पुरातन कुछ और ही रीति थी तथा अब कुछ और ही रीति है। पूर्व समय में जब कोई प्रातःकाल ब्रह्ममुहूर्त्त में गङ्गास्नान को जाता था तो मार्गमें दोनों

ओर के घरोंमें से विद्यार्थियों की 'हरिःॐ' 'नत्वा सरस्वतीं देवीम्' 'वागर्थाविव सम्पृक्तौ' इत्यादि पवित्र ध्वनि उनके कानों में पड़ती थी, परन्तु आजकल वह रीति बदलकर उसके स्थान में 'पिग् माने सुअर, डाग् माने कुत्ता' और Tom eats two eggs इत्यादि शब्द सुनने में आते हैं, फिर ऐसे पढ़ने से तामसी बुद्धि क्यों नहीं होगी ? अवश्य ही होगी ! अंगरेजी विद्यासे विभूषित सुधारक लोग, अपने माता पिता को These foolish superstitious old folks ! ऐसे शब्दों से आदर करते हैं, कभी 'यह मूर्ख पिता हमको अच्छा नहीं लगता' ऐसे भी वीरशब्द सुनने में आते हैं, धन्य है उन सुपुत्रों को !!, जिनके रज वीर्य से उत्पन्न हुए, जिनके परिश्रम से संसार में छोटे से बड़ेहुए तथा नाम पाया,उन मातापिता के उपकारका बदला इन शब्दों में ? अस्तु। बालकों को बचपन से गुरुजनों की मर्यादाका पालन सिखाना चाहिये। इसकारण ही हमारे शास्त्र में—'मातृदेवो भव, पितृदेवो भव' इत्यादि आज्ञादी हैं। इन सब आज्ञाओं का पालन करके और अटल ब्रह्मचर्य रखकर विद्यादेवी की उपासना कीजाय तो वह अवश्य ही प्रसन्न होगी और फिर धनकी प्राप्तिमें भी कमी नहीं रहेगी, इसके सिवाय ब्रह्मचर्य से वीर्य की रक्षाहोकर गृहस्थाश्रम में बल और सन्तान में किञ्चिन्मात्रभी निर्बलता नहीं होगी, इसप्रकार यह ब्रह्मचर्य विद्याकी प्राप्ति का, परम्परा से द्रव्य की प्राप्तिका और गृहस्थाश्रमका परम उपकारक है। पुरुष का वीर्य १६ वर्ष की अवस्था के अनन्तर परिपक्व होनेलगता है और यही समय विद्याभ्यास कामी होता है। इसकारण ऐसी अवस्था में विवाह करके पुत्रके ब्रह्मचर्य को नहीं बिगाड़ना चाहिये। उसको यदि होसके तो २४ वर्ष पर्यन्त ब्रह्मचर्य का पालन करनेदेय, चौबीस वर्ष के अनन्तर विवाह करै, उस समय भी उसकी स्त्री १२ वर्षतक की होनीचाहिये। अपने पुत्रका विवाह शीघ्रकरें, ऐसी किसी की इच्छा होयतोभी वह वधूवर की अवस्था में १२ वर्ष का अन्तर

रक्खे। कन्या १६ वर्षके अनन्तर गर्भधारण के योग्य होती है, इसकारण ऐसी रीति से योग्य अन्तर रखकर विवाह कियाजायगा तो सन्तान नीरोग और दीर्घायु होगी। इंग्लैंड में धर्मसम्बन्धी मत और व्यवस्था चाहेजैसी हो, परन्तु उन्होंने ब्रह्मचर्य की कीमत भलीप्रकार समझी है, वह अधिक अवस्था में विवाह करते हैं इस कारण उनकी सन्तानें नीरोग और दृढ होकर तहाँ के लोग पदार्थ विज्ञान आदि भौतिकशास्त्रों में और भिन्न शास्त्रीय तत्त्व की खोज में सबसे आगे बढ़हुए हैं। इसप्रकार अपना ब्रह्मचर्य उत्तम होजाय तो सुदिन समझना चाहिये। जैसे पहिले आश्रम में ब्रह्मचर्य है तैसेही दूसरे गृहस्थाश्रम में एकपत्नीव्रत अवश्य होना चाहिये। जिस घरमें के पुरुष केवल अपनी स्त्री मेंही तत्पर और स्त्री पतिव्रता होती है, तहाँ मानो श्रीशिवपार्वती काही जोड़ा बसताहै,ऐसा समझो, नहीं तो घर २ पतिव्रता ही देखने में आती हैं। इस विषय में एक कहावत प्रसिद्ध है कि-एक समय एक सच्ची पतिव्रता स्त्री धानकूट रहीथी, उससमय उसके पति ने पीनेको पानी मांगा, सो विलम्ब न होजाय इसकारण ऊपर को हाथ में उठाया हुआ मूसल जहाँ का तहाँ ही छोडकर घर में पानी लेनेको गई,इधर वह मूसल ज्योंकात्यों ऊपर ही अधर खडा रहा, यह देखकर,तहाँ बैठीहुई एक पडोसन को बड़ा आश्चर्य हुआ और उसने ऐसा होने का कारण बूझा तो वह कहने लगी कि-यह सब पतिव्रतधर्म का प्रभाव है, इसमें कोई जादू या युक्ति नहीं है, तब उस पडोसन ने भी अपने घर जाकर पतिके बाहर से आनेपर कहा कि-तुम घर में सोकर देखो मैं धान कूटती हूँ और तुम मुझ से पानी माँगो, पति ऐसे कथन का कुछ भेद न समझा, परन्तु स्त्री बड़ी कर्कशा थी,इस कारण वह उसके कथनानुसार कार्य करने को उद्यत होगया, वह घर में जाकर सोरहा और थकजाने के कारण उसको उसी समय

निद्रा आगई इससे पानी माँगना भूल गया, तब इसने पानी क्यों नहीं माँगा यह बात देखने को वह स्त्री भीतर गई और देखातो वह निद्रा में घुर्राटे लेरहा है, बस इसको क्रोध आगया और उसको भगाने के लिये पहिले ही मूसल के दो हूले लगाकर बोली कि–तुमने मेरे कहने के अनुसार पानी क्यों नहीं माँगा ? उसने कहा मैं भूलगया तब वह बोली कि–अब होश में रहियो,सोना या भूलना मत,मैं बाहर जाकर धानकूटती हूँ और तुम पानी माँगो, तिसीप्रकार पतिके पानी माँगते ही वह मूसल को अधर छोड झपटकर पानी देने को चली परन्तु मूसल कैसे अधर रहे ? वह उसके मस्तक परही गिरा और कपाल फूटगया,ऐसा घाव हुआ कि–अच्छा होने में बहुत ही दिन लगे। सार यह है कि परमेश्वर ऐसी पतिव्रता किसी गृहस्थके न घरदेय।

जैसे ब्रह्मचर्य है तैसे ही शौचनामक अंगकाभी पालन करना चाहिये। शौच अर्थात् शुद्धि, वह दोप्रकार की है, बाहरी और भीतरी बाहर की शुद्धि मट्टी जल आदि से होती है और अन्तःकरण पवित्र रखने को भीतरी शुद्धि कहते हैं। स्पृश्यास्पृश्य, भक्ष्याभक्ष्य, पेयापेय इत्यादि विषय में पूरा विचार करके आचरण शुद्ध रक्खे, चाहे प्राण चलेजायँ परन्तु धर्माचरण को न छोडै। पहिले औरंगजेबने अपना धर्म ग्रहण कराने के लिये बहुत से ब्राह्मणों के ऊपर जुल्म किया और जिन्होंने ग्रहण न किया उन के शिर कटवाकर अपने दरबार में लटकवादिये थे तथा जो कोई नया ब्राह्मण आता था उसको वह दिखाकर धमकता था और इसके सिवाय मुसल्मान धर्मस्वीकार करने वालों को सूबावनादेना आदि बडे २ ओहदों का लालच भी दिखाता था, उससमय उसकी धमकी का कुछ भय न मानकर तथा ओहदों के लोभ में न पडकर सैंकडों ब्राह्मण अपना शरीर त्यागने को उद्यत होगये थे परन्तु अपनाधर्म नहीं छोडा। आजकल परम-दयालु अंग्रेज सरकार के राज्य में कमर से सोना बाँधकर चाहे

जहाँ आनन्द से फिरो, इतनी निर्भयता और शान्ति चारोंओर हर एक पुरुष के देखने में आती है और किसीके उपर अपनाधर्म छोडने के लिये किसी प्रकार का अत्याचार नहीं कियाजाता है, तथापि हम में के अविचारी पुरुष रेल में से नीचे उतरते ही विलियम होटल में घुसजाते हैं, ऐसा धर्मविरुद्ध आचरण न करके पवित्रता के साथ रहना चाहिये। यदि कोई कहे कि—आजकल के समय में पूर्णरीति से धर्माचरण होना कठिन है ? तो इसका उत्तर यह है कि—जितना होसके उतना करै, सत्कर्म थोडा किया जायगा तो वह भी वृथा नहीं जायगा। भगवान् श्रीकृष्णने गीता में कहा है कि—

प्राप्य पुण्यकृताँल्लोकानुषित्वा शाश्वतीः समाः।
शुचीनां श्रीमतां गेहे योगभ्रष्टोऽभिजायते॥

तात्पर्य यह है कि सदाचरण से वर्त्ताव करनेपर भी यदि मनुष्य प्रारब्धवश कामक्रोध आदि के फेर में पडजाय तो पहिले संस्कारों के बलसे वह अपनी बुरी दशा से तत्काल छूटजाता है, इस विषय में दृष्टान्तरूप एक कथानक कहते हैं।

पूर्वसमय मे दक्षिण प्रान्त में वीणानदी के तटपर एक विल्वमङ्गल नामक उच्चकुल का ब्राह्मण रहताथा, वह बडा विद्वान् और ईश्वर भक्त था, दैववशात् नदी के तटपर एक चिन्तामणी नामक वेश्या रहती थी, उसके साथ इसका प्रेमभाव होगया, कि इसको रात-दिन उसके सिवाय और कुछ सूझता ही नहीं था, इसकारण इधर ईश्वर की भक्ति में कमी होनेलगी। ऐसा होते२एकदिन विल्वमङ्गल के घर उस के पिताका श्राद्धथा इसकारण उस दिन चिन्तामणि के घर जाने का अवसर नहीं मिला और रातकोभी कुछ इष्टमित्र भोजन करने को आये थे अत. आधीरातपर्यन्त समय न मिला, अन्त में सब कामधंधे को झटपट निवटाकर बडी आतुरता से आधीरात के अनन्तर उस के स्थान की ओर को चला, परन्तु वहर

आतेही मूसलधार जल बरसने लगा, चारोंओर बिजली चमकरही थी और मेघों का गड़गड़ाहट होने से वह विचारने लगा कि—अब कैसे जाऊँ ? अन्त में, कुछ भी हो, आज सारेदिन उसकी ओर गया नहीं हूँ अतः अवतो अवश्य ही जाना चाहिये, ऐसा विचारकर बड़ी शीघ्रता से चलनेलगा और किसीप्रकार नदीके तटपर आकर पहुँचा परन्तु तहाँ नदीको दोनों तटों से लवालव भरीहुई जाते देखकर हिम्मत टूटगई और अब आगेको चलूं या पीछेको लौट जाऊँ, इसकी कुछ मीमांसा न करसका ।

*इस विचार में वह तहाँ खड़ा था उसीसमय सर्वव्यापक दयालु परमात्मा श्यामसुन्दर प्रभु ने विचारा कि—यह एकसमय मेरा परमभक्त था, परन्तु अब इस वेश्या के फँदे में फँसगया है अतः इसके उपर अनुग्रह करना चाहिये । इधर बिल्वमङ्गल ने उस वेश्या की ओरको ध्यान लगाएहुए निश्चय किया कि—यहां कोई डोंगी आदि तो दीखती नहीं इसलिये एकबार नदी में छलाँग तो लगाऊँ, कहीं न कहीं तो परलेपार जाहीलगूँगा, छलाँग मारने को था कि—इतने ही में समीपही किनारेर एक मुर्दा बहता आरहा था, वह इस की दृष्टि पड़ा; विषयसे अन्धा होने के कारण इसने समझा कि—अहाहा ! मेरी प्रियाने मेरे लिये घन्नई भेजी है, अब इसके ऊपर बैठकर मैं परलेपार को जाऊँगा, ऐसा विचार उस के ऊपर बैठ युक्ति करते करते वह मुर्दा किसीप्रकार परलेपार जाकर लगगया इसने उसको परलेपार बाँधदिया और उस वेश्याके स्थानपर जाकर बहुत पुकारा परन्तु ऐसी घोररात्रि में गाढ़निद्रा के समय और धड़ाधड़ चारों ओर वर्षा होने में उस को इसकी पुकार क्यों सुनाई आनेलगी थी ? घरके चारों ओर घूमतेर एक खिड़की खुली हुई दीखी, उस की चौखट के लगाव से एक बड़ा लम्बा सर्प लटकरहा था उसको इन महात्माजी ने रस्सी समझा और मेरी प्रियाने मेरे आने के निमित्त

पहिले से ही यह प्रबन्ध कररक्खा है ऐसी कल्पना करके उसीमार्ग से चढ़ने के निमित्त सर्पकी पूँछ को हाथसे पकड़ा और ऊपर को चढ़नेलगा, वह सर्प भी घबड़ाकर जोर के साथ ऊपरको चढ़नेलगा, तब तो यह भी उस के सहारे तत्काल ऊपर पहुँचगया और पहिले उस वेश्या को जगाया, वह एकायकी चौंकउठी और सावधान होकर देखा तो बिल्वमङ्गल सन्मुख खड़ा है, वह चकित होकर कहनेलगी कि—अरे ! ऐसी घोररात्रि में और ऐसी घनघोर वर्षा के समय तू यहां क्यों आया है ? तब इसने उत्तर दिया कि तैंने घन्नई (घड़े बाँधकर बनाईहुई डोंगी) भेजी थी और डोरी लटकानेका भी प्रबन्ध करदिया था, उसकी ही सहायतासे मैं यहां आपहुँचा हूँ उस ने कहा कि—डोरी और घन्नई कहां है ? वह मुझे दिखा, तब यह उस को दिखाकर गया और दीपक से देखा तो वह घन्नई नहीं थी चिथड़ाहुआ मुरदा था और डोरीके स्थानपर शीतसे ठिठराया हुआ एक सर्प पड़ाथा, वेश्या उस को देखकर बड़ी अचरज में होगई और कहनेलगी कि—अरे गृहस्थ ! तू जाति का ब्राह्मण और इस ग्राम में प्रतिष्ठित कुलका है, पहिले तेरी पण्डितों में गिनती थी और अब तू मेरे ऊपर आसक्त होकर अपनी आयु का नाश करलेता है तथा मरण के अनन्तर घोर नरक पान का साधन कररहा है ऐसा साहस और प्रेम यदि तू ईश्वर के विषैं करेगा तो तेरा और तेरे सब कुलका उद्धार होजायगा, इसकारण अब तू यहांसे जा और अधोगति के मार्ग से बच, ऐसा उपदेश करा (यद्यपि वेश्या दुष्ट होती है परन्तु ईश्वरकी प्रेरणा से सर्वत्र सब कुछ होसकता है) वेश्याके ऐसे उपदेश से तथा सर्प और मुर्दे के भयानक दृश्य को देखने से उस के चित्त को बड़ा खेद होकर वैराग्य होगया और उसीसमय घरद्वार को छोड़कर प्रभु के दर्शनके लिये तहांसे वृन्दावनको चलदिया। निरन्तर प्रभु के चरणों में ध्यान

दिखाकर सन्ध्याके द्वारा मनुष्य को सुख, आयु और आरोग्य की प्राप्ति होकर मोक्षकी भी प्राप्ति होजाती है, यह बात कही थी। उस में से, कलके व्याख्यान में 'सन्ध्या से आयु कैसे बढ़ती है' इस बात का विचार किया, अब आज संध्यासे सुख और मोक्ष की प्राप्ति कैसे होती है, इस का विचार करते हैं, आशा है, आप सब लोग ध्यानके साथ सुनेंगे। प्राणायाम का आनुभविकज्ञान न होनेसे जिन्होंने उस का ठीक २ रहस्य नहीं जाना है ऐसे कितनेही वैद्य तथा डाक्टर कहेंगे कि—कुम्भक करनेसे बाहर की हवा में का शुद्ध प्राणवायु (ऑक्सिजन) रुधिरको,जितना चाहिये उतना नहीं मिलेगा तब शरीरमेंका रुधिर बिगड़कर उल्टे नानाप्रकारके रोग उत्पन्न होजायँगे; ऐसा कहना भ्रम है, क्योंकि बेलून में बैठकर बहुत ऊँचे पर गयाहुआ मनुष्य केवल प्यॉराशूट् (एकप्रकारकी छत्री) की सहायतासे, ऊपर बेलून में से एकसाथ छलाँग मारकर नीचेको कैसा सुरक्षित (बेजोखों) चलाआता है, यह बात जिसको मालूम नहीं है वह अपने अज्ञान से इस विषय में अट्टसट्ट कल्पना करता है तैसे ही कुम्भकप्राणायाम के विषय में उपरोक्त शंका करना निरर्थक है। हमारे देश में जब प्रथमही प्रथम रेल चली थी तो मूर्खलोग देवता समझकर इसकी पूजा किया करते थे, परन्तु जब आगे को इसका असली तत्त्व विदित हुआ तब वह मूर्खता की रीति बन्द होगई। तिसीप्रकार ज्यों२ प्राणायाम का अधिक अभ्यास होताजायगा त्यों२, बाहर की प्राणवायु के आश्रय के बिना कैसे रहाजाता है, इसका निश्चय होताजायगा। जो योगी सिद्धदशाको पहुँचगया है उसको बाहरके ऑक्सिजन की अधिक परवाह नहीं होती है। श्रीकृष्णजी ने योगकी ही विशेष महिमा कही है—तपस्विभ्योऽधिको योगी ज्ञानिभ्योऽपिमतोऽधिकः। कर्मिभ्यश्चाधिको योगी तस्माद्योगी भवार्जुन॥ (भ० गी० अ० ६ श्लो० ४६),यह योगकी

महिमा अनधिकारियों को एकायकी समझमें नहीं आवेगी, परन्तु हमारे शास्त्रकारों ने दूरदृष्टि से बालकपन से ही हमारा योगमार्ग में प्रवेश होनेका प्रबन्ध करदिया है। ८ वर्षका होतेही बालक का यज्ञोपवीत करके उसको सन्ध्या में ही प्राणायामपर्यन्त योगमार्ग युक्ति से सिखायाजाता है, फिर वह अभ्यास करते करते उसको बढाकर, अहिंसा--ब्रह्मचर्य आदि धर्मोंका अटल पालन करता हुआ अन्त में समाधिपर्यन्त पहुचजाय अर्थात् इस लोक के सकल सुखों को भोग कर अन्त में मोक्ष पाजाय, ऐसा सुन्दर क्रम बनादिया है।

सुख के विषय में यदि व्यवहारदृष्टि से देखाजायतो सुख सापेक्ष देखने में आता है अर्थात् ज्यों २ मनुष्य अपने से ऊपर की श्रेणी के मनुष्यों के सुखकी ओर ध्यानदेता है त्यों २ उसको सुख की प्राप्ति न होकर उलटा दुःख होनेलगता है, परन्तु इससे उलटा अर्थात् ज्यों २ अपने से नीचीश्रेणी के मनुष्यों के सुखकी ओर को देखता है त्यों २ वह समझनेलगता है कि-मैं अधिक सुखी हूँ, कहा है कि--अधोऽधःपश्यतःकस्यमहिमानोपचीयते। उपर्युपरिपश्यन्तः सर्व एव दरिद्रति ॥ इतना बड़ा इन्द्र है, वह भी यदि अपने से अधिक ऐश्वर्यवान् लक्ष्मीपति विष्णुभगवान् की ओर को देखेगा तो उसको अपना ऐश्वर्यतुच्छ प्रतीत होकर सुख नहीं होगा, फिर औरों की बातही क्या ? जो कुछ थोड़ा बहुत सुखलोगों को प्रतीत होता है, वह भी क्या सदा एक समान रहता है ? आजकोई इच्छित वस्तु मिलने से जो सुख प्रतीत होता है, कलसे ही उस वस्तु से उतना सुख प्रतीत नहीं होगा, देखो--इस मेजपर रक्खे हुए सुन्दर लैंपको देखकर किसी की इच्छाहो कि--ऐसा लैंपमैंभी लाऊँ, तो ऐसा लैंप खरीदकर लानेपर पहिले दिन तो लैंपका स्वामि आपही उसको झाड़पूछकर तेलबत्ती डालेगा, परन्तु कुछ दिन बीतनेपर उस लैंप के चिमनी और मोदरा आदि भाग अलग २ कहांपड़े हैं, यह सुध

पकड़। और ठीक मार्गमें को करादिया (प्रायःअन्धोंको हाथ पकडकर चालकही लेजाते हैं,इसकारण प्रभु बालक बने) बिल्वमंगलने भी उन के हाथ को कसकर पकडलिया और प्रार्थना करी कि–हे दीनबन्धो! परमात्मन्! तुम, पवन पीकरें तीव्रतपस्या करनेवाले योगियों के और ब्रह्मादिकों क भी हाथ नहीं लगते हो,परन्तु आज मुझ गरीब के हाथ अच्छेलगे हो! अब मैं तुमको कैसे छोडूँ, ऐसा कहकर इस का कंठगद्गद होगया और हृदय प्रेम से धक् २ करनेलगा, तब वह बालक लाडके साथ 'मुझे भूँखलगी है जाने दो' ऐसा कहकर हाथ में से छूटकर चलता हुआ; ठीकही है, सारे ब्रह्माण्ड को नख के अग्रभागपर नचानेवाले प्रभु के सामने विचारे बिल्वमङ्गल की क्या चलसकती थी ? अन्त में उसने कहा कि हे भगवन्!–

बाहु मरोरे जात हो, निबलजानके मोय।
हिरदे तें जो जाहुगे, बली बखानूँ तोय॥

अर्थात् यद्यपि तुम मेरे हाथ में से निकलगये परन्तु मैंने अपने हृदय में तुम्हें बाँधही रक्खा है, देखूँ आप उस में से कैसे निकलेंगे। सार यह है कि–भक्तपालक परमात्मा अपने भक्तों के लिये अनेकों अवतार धारकर, संकटके समय उन की सहायता करते हैं और जगत् में अपने भक्तों का माहात्म्य बढ़ाते हैं।

द्रौपदीके चीरहरण के समय वस्त्रका ही अवतार धारकर प्रभु आप ही अनन्त वस्त्र बनगये थे, आजकल के शिक्षित कहेंगे कि–यह सब मिथ्या है, द्रौपदी ने ही कोई ऐसी युक्ति करी होगी कि जिस से अपने भीतरी वस्त्रका पता न लगे, परन्तु यह विचार ठीक नहीं है, यह प्रभुकी भक्तवत्सलता ही थी। आफ्रिका की सहारा नामक मरु में, जहाँ सौ २ कोसतक जलका पता नहीं ऐसे स्थल पर यदि कोई भक्तशिरोमणि पानी के बिना कष्टपावेगा तो उस के लिये प्रभु तहाँ सुन्दरसरोवर के रूप में अवतार धारकर उसकी

तृषा को शान्त करेंगे। भक्तों के लिये प्रभु किसरूप से कैसा अवतार धारते हैं, इस का नियम नहीं है। आकाश में के तारागणों की गिनती होजाय। मरुभूमि की बालुका के कण चाहे गिनने में आजायँ, परन्तु प्रभु के अवतारों की गिनती नहीं होसकती। सार यह है कि—सत्कर्म करनेवाला पुरुष प्रारब्धवश यदि काम क्रोधादि के फंद में पडजाय तो भी वह पहिले सत्कर्मों के प्रभाव से तत्काल मार्गपर आकर ईश्वरकी भक्ति में रत होजाता है और वह रतहुआ कि—फिर ईश्वर उसकी उपेक्षा नहीं करते हैं।

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः।

व्याख्यान पाँचवाँ।

विषय—सन्ध्यासे सुख और मोक्षकी प्राप्ति।

संसारसम्पातनिपातितानां मोहप्रमादेन विमोहितानाम्।
दुःखार्णवप्लावितजीवितानां त्वमेव नस्तत्परमावलम्बनम्॥

कलियुगरूप बडाभारी अन्यायी राजा आज पाँचसहस्र वर्ष से अपने काम क्रोध आदि मंत्रियों के साथ, कलियुगीजीवों के ऊपर अपना अदल बैठाकर उनको दुःखदेरहा था, उसको खेदकरनिकालदेने के लिये सनातनधर्मरूपी चक्रवर्ती राजा, ज्ञान की गोली और विज्ञानकी बारूद भरकर तथा शान्ति, सन्तोष, सत्सङ्ग और विचार इन चार घोडों से जुतीहुई ईश्वर की भक्तिरूप गाडीपर बैठकर आया है, आशा है कि—थोडे ही समय में हरिनामरूपी छर्रोंकी मार से उस कलियुगरूपी शत्रुको जर्जर करडालेगा, इसकारण एकवार हरिनाम का स्मरण करो—

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरेकृष्ण हरेकृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।

दूसरेदिन के व्याख्यान में सन्ध्या का ब्रह्मविद्या से सम्बन्ध

दिखाकर सन्ध्याके द्वारा मनुष्य को सुख, आयु और आरोग्य की प्राप्ति होकर मोक्षकी भी प्राप्ति होजाती है, यह बात कही थी। उस में से, कलके व्याख्यान में 'सन्ध्या से आयु कैसे बढ़ती है?' इस बात का विचार किया, अब आज संध्यासे सुख और मोक्ष की प्राप्ति कैसे होती है, इस का विचार करते हैं, आशा है, आप सब लोग ध्यानके साथ सुनेंगे। प्राणायाम का आनुभविकज्ञान न होनेसे जिन्होंने उस का ठीक २ रहस्य नहीं जाना है ऐसे कितनेही वैद्य तथा डाक्टर कहेंगे कि—कुम्भक करनेसे बाहर की हवा में का शुद्ध प्राणवायु (ऑक्सिजन) रुधिरको,जितना चाहिये उतना नहीं मिलेगा तब शरीरमेंका रुधिर बिगड़कर उलटे नानाप्रकारके रोग उत्पन्न होजायँगे; ऐसा कहना भ्रम है, क्योंकि बेलून में बैठकर बहुत ऊँचे पर गयाहुआ मनुष्य केवळ प्यॉराशूट् (एकप्रकारकी छत्री) की सहायतासे, ऊपर बेलून में से एकसाथ छलाँग मारकर नीचेको कैसा सुरक्षित (बिना चोटके) चलाआता है, यह बात जिसको मालूम नहीं है वह अपने अज्ञान से इस विषय में अट्टसट्ट कल्पना करता है तैसे ही कुम्भकप्राणायाम के विषय में उपरोक्त शंका करना निरर्थक है। हमारे देश में जब प्रथमही प्रथम रेल चली थी तो मूर्खलोग देवता समझकर इसकी पूजा किया करते थे, परन्तु जब आगे को इसका असली तत्त्व विदित हुआ तब यह मूर्खता की रीति बन्द होगई। तिसीप्रकार ज्यों२ प्राणायाम का अधिक अभ्यास होताजायगा त्यों२, बाहर की प्राणवायु के आश्रय के बिना कैसे रहाजाता है, इसका निश्चय होताजायगा। जो योगी सिद्धदशाको पहुँचगया है उसको बाहरके ऑक्सिजन की अधिक परवाह नहीं होती है। श्रीकृष्णजी ने योगकी ही विशेष महिमा कही है—तपस्विभ्योऽधिको योगी ज्ञानिभ्योऽपिमतोऽधिकः। कर्मिभ्यश्चाधिको योगी तस्माद्योगी भवार्जुन ॥ (भ० गी० अ० ६ श्लो० ४६),यह योगकी

महिमा अनधिकारियों को एकायकी समझमें नहीं आवेगी, परन्तु हमारे शास्त्रकारों ने दूरदृष्टि से बालकपन से ही हमारा योगमार्ग में प्रवेश होनेका प्रबन्ध करदिया है। ८ वर्षका होतेही बालक का यज्ञोपवीत करके उसको सन्ध्या में ही प्राणायामपर्यन्त योगमार्ग युक्ति से सिखायाजाता है; फिर वह अभ्यास करते करते उसको बढ़ाकर, अहिंसा–ब्रह्मचर्य आदि धर्मोंका अटल पालन करता हुआ अन्त में समाधिपर्यन्त पहुंचजाय अर्थात् इस लोक के सकल सुखों को भोग कर अन्त में मोक्ष पाजाय, ऐसा सुन्दर क्रम बनादिया है।

सुख के विषय में यदि व्यवहारदृष्टि से देखाजायतो सुख सापेक्ष देखने में आता है अर्थात् ज्यों २ मनुष्य अपने से ऊपर की श्रेणी के मनुष्यों के सुखकी ओर ध्यानदेता है त्यों २ उसको सुख की प्राप्ति न होकर उलटा दुःख होनेलगता है, परन्तु इससे उलटा अर्थात् ज्यों २ अपने से नीचीश्रेणी के मनुष्यों के सुखकी ओर को देखता है त्यों २ वह समझनेलगता है कि–मैं अधिक सुखी हूँ, कहा है कि–अधोऽधःपश्यतःकस्यमहिमानोपचीयते। उपर्युपरिपश्यन्तः सर्व एव दरिद्रति ॥ इतना बड़ा इन्द्र है, वह भी यदि अपने से अधिक ऐश्वर्यवान् लक्ष्मीपति विष्णुभगवान् की ओर को देखेगा तो उसको अपना ऐश्वर्यतुच्छ प्रतीत होकर सुख नहीं होगा, फिर औरों की बातही क्या ? जो कुछ थोड़ा बहुत सुखलोगों को प्रतीत होता है, वह भी क्या सदा एक समान रहता है ? आजकोई इच्छित वस्तु मिलने से जो सुख प्रतीत होता है, कलसे ही उस वस्तु से उतना सुख प्रतीत नहीं होगा, देखो–इस मेजपर रक्खे हुए सुन्दर लैंपको देखकर किसी की इच्छाहो कि–ऐसा लैंपमैंभी लाऊँ, तो ऐसा लैंप खरीदकर लानेपर पहिले दिन तो लैंपका स्वामि आपही उसको झाड़पूछकर तेलवत्ती डालेगा, परन्तु कुछ दिन बीतनेपर उस लैंप के चिमनी और मोहरा आदि भाग अलग २ कहांपड़े हैं, यह सुध

भी नहीं रहेगी। यही दशा विवाह आदि के विषय में समझना चाहिये, सार यह है कि–जब इच्छित विषय प्रथमही मिलता है उस समय जो आनन्द प्रतीत होता है वह आनन्द कुछ दिन बीतनेपर वैसा नहीं रहता। इससे स्वाभाविक ही यह प्रश्नउठता है कि–तो सब से अधिक और निरन्तर रहनेवाला सुख कहाँ कौनसा? और वह, कहाँ है और कैसे मिलेगा ? ।

योगी कहते हैं कि–प्राणवायु को सुषुम्ना के द्वारा ब्रह्मरन्ध्र में लेजाय, उसके तहाँ स्थिर होनेपर समाधि के प्रभाव से आत्मसाक्षात्कार होकर वह अलौकिक और अखण्ड आनन्द प्राप्तहोता है। वेदान्ती कहते हैं कि–आत्मा आनन्दका कन्द है और उस आनन्द के सामने यह सकल विषयसुख तुच्छ हैं। ऐसे आनन्द का साधन प्रत्येक पुरुष के बहुत समीप है तथापि उसका अनुभव क्यों नहीं होता। और उलटे सबलोग दुःख सेही व्याकुल क्यों रहते हैं? यदि कोई ऐसा कहेतो इसका कारण यह है कि–मनुष्य ज्यों २ बहिःप्रज्ञ अर्थात् बाहरी विषयों में आसक्तहोता है त्यों २ इसको उस आनन्द का मिलना कठिन होताजाता है, परन्तु जैसे २ अन्तःप्रज्ञ अर्थात् अन्तर्मुख होताजायगा तैसे २ इसको उस आनन्द का अनुभव प्राप्त होताजायगा, श्रुति कहती है कि–सर्वं ह्येतद्ब्रह्मायमात्मा ब्रह्म सोयमात्मा चतुष्पात्। (माण्डूक्योपनिषत्) यह सब ब्रह्मरूप है, यह आत्मा भी ब्रह्मरूप है, इस आत्मा के चारपाद अर्थात् चार अवस्था हैं, जैसे अग्नि में प्रकाश, उष्णता, जलना और शान्त होजाना यह चार अवस्था दीखती हैं तैसेही आत्मा कीभी चार अवस्था हैं, उनचारों में से कौनसी अवस्था में विशेष सुख या अखण्ड आनन्द का अनुभव मिलता है, इसको जानने के लिये उन चारों अवस्थाओं का संक्षेप से वर्णन करते हैं। "जागरितस्थानो बहिः प्रज्ञः सप्ताङ्ग एकोनविंशतिमुखःस्थूलभुग्वैश्वानरःप्रथमःपादः।"

(माण्डूक्योपनिषत्)। पहिली जागृत अवस्था है, इस में आत्मा बहिः प्रज्ञहोता है अर्थात् बाहर के पदार्थों को जानता है, सकल विश्व उसका देह है इसकारण उसको इस अवस्था में 'विश्वात्मा' या 'वैश्वानर' कहते हैं। स्वर्ग मस्तक, सूर्य नेत्र, वायु प्राण, आकाश देह का मध्यभाग, जल मूत्रस्थान, पृथ्वी चरण और आहवनीय अग्नि मुख, इसप्रकार उसके देह के सात अङ्ग हैं। पाँच प्राण, पाँच कर्मेन्द्रियें, पाँच ज्ञानेन्द्रियें, मन, बुद्धि, चित्त, अहङ्कार यह उन्नीस मुख हैं, यह उन्नीसों भोगका साधन होने के कारण मुख कहे हैं। इन मुखोंसे ही स्थूल शब्दादिकों का बाहरीवृत्ति से जागृत् अवस्था में भोगहोता है।

यह आत्मा का प्रथम पाद (पहिली अवस्था)है। यदि कोई कहे कि इस में क्या सुख होता है? तो इस का उत्तर पहिले ही कह चुके हैं कि–इस में कुछ सुख नहीं होता, इस अवस्था में वृत्तियें बाहर बिखरी हुई होने के कारण बाहरी विषयों में आसक्ति होने से हरघड़ी दुःख ही दुःख होताहै। आज पुत्र मरा, कल घाजला परसों कचहरी में मुकद्दमा जारीहोगया, अतरसों को ज्वर या कोई दूसरा रोग आगया, इसप्रकार हरसमय कोई न कोई उपाधि चिपटी ही रहती है। "स्वप्नस्थानोन्तमप्रज्ञः सप्ताङ्ग एकोनविंशतिमुखः प्रविविक्तभुक् तैजसो द्वितीयः पादः।" (माण्डूक्योपनिषत्) दूसरी स्वप्नावस्था है, इस में आत्मा अन्त प्रज्ञ (अन्तर्दृष्टि) होकर और बाहरी स्थूल इन्द्रियों के सब व्यापारों को भीतर को खेंचकर केवल तेजःस्वरूप से रहताहै, अतः इस अवस्था में इसको 'तैजस' कहते हैं, जैसे कोई चित्रकार (फोटोग्राफर) किसी बड़ेभारी शहर का फोटो एक छोटे से काच के शीशे पर लेकर उसको अपनी इच्छा के अनुसार चाहे जितना बड़ा करलेता है, तैसे ही आत्मा भी इस विराट् विश्व की सृष्टि

का फोटो अन्तःकरणरूप शीशेपर एक बिन्दु में लेकर, स्वप्न अवस्था में उसको अपनी इच्छा के अनुसार बदलता है अर्थात् जागृत् अवस्थामें स्थूल इन्द्रियों से भिन्न २ विषयों का उपभोग किया होता है, उन सब विषयों के केवल संस्कार स्वप्नावस्था में उद्बुद्ध होकर तिन २ विषयों के रूप में भासने लगते हैं, इस स्वप्नावस्था में भी तिन विषयों का उपभोग करने के लिये पीछे कहेहुए सात अंग और उन्नीस मुखके वह केवल मनोमय (मनसे कल्पित) ही होते हैं, अर्थात् स्वप्नावस्था में आत्मा अपने तेजसे, सब अङ्ग और सब इन्द्रियें केवल मनोमय नवीन रचकर, उनकी सहायता से स्वप्न की सृष्टि में के सूक्ष्म(वासनामय) भोगों को भोगता है, यह आत्माका दूसरा पाद है,यदि कोई प्रश्नकरे कि–इस में क्या सुख है ? तो इसका उत्तर भी 'नहीं' ऐसा ही मिलेगा, क्योंकि–इस अवस्था में भी ' मैं राजा होगया ' ' मुझे सर्प ने डसलिया ' इत्यादि अनेकों प्रकार के । सुख दुःखोंका अनुभव जागृत् अवस्था की समान ही होता है । जाग्रत अवस्था और आगे कही जानेवाली सुषुप्ति अवस्था, इन दोनों के मध्य की अवस्था को स्वप्नावस्था कहते हैं । योगशास्त्र में ऐसा कहा है कि–जागृत् अवस्था के समय, हृदय में जो द्वादशदल चक्र है, उसकी पखड़ियों के चारों ओर मनोरूपी भ्रमर घूमता रहता है । जिसदल-पर वह विशेष जमकर रहेगा उसी के अनुसार सकल वृत्तियों में न्यूनाधिकता होती है, हृदय में से दो नाड़ियें नेत्रों की ओर को गई हैं, एक का नाम गान्धारी और दूसरी का हस्त जिह्वा है । दाहिने नेत्र में गईहुई गान्धारी और बाएँ नेत्र में गईहुई हस्त जिह्वा है।हर्षशोक आदि वृत्तियों के अत्यन्त बढ़जाने पर हृदयकमल के चारोंओर एक जलमय स्थान है जिसको अंग्रेजी में(Peri-ardiam) कहते हैं, उस में का जल ऊपर की नाड़ी के द्वार से नेत्र में पहुँचकर आँसू बनकर

बाहर आता है। सारे दिन अपना २ व्यापार करने से जब इन्द्रियें थकजाती हैं और निद्रा आती है उससमय ऊपरोक्त कमलकी पख- रियें सकुड़ने लगती हैं और मन उन के मध्य में रहकर स्थिर होने लगता है, बाहरी विषयों में बलवती आसक्ति रहने से मन की सब चंचलता एकसाथ नहीं जाती है और तिन २ विषयों का संस्कार- रूप से भान होता रहता है,यही स्वप्नावस्था है, इस में भी सुख नहीं है यह बात ऊपर कह ही चुके।अब आत्मा के तीसरे पाद का विचार करते हैं–' यत्र सुप्तो न कञ्चन कामं कामयते न कञ्चन स्वप्नं पश्यति तत्सुषुप्तम्। सुषुप्तस्थान एकीभूतः प्रज्ञानघन एवा- नन्दमयोह्यानन्दभुक् चेतोमुखः प्राज्ञस्तृतीयः पादः।' (माण्डू- क्योपनिषत्) तीसरी सुषुप्ति अवस्था है, इस में आत्मा पूर्ण निद्रा वश होकर कुछ भी इच्छा नहीं करता और कोई स्वप्न भी नहीं देखता है किन्तु प्रज्ञानघन रहता है अर्थात् उस में जागृत् अवस्था का और स्वप्नावस्था का ज्ञान एक अविद्यारूप होकर रहता है। इस पाहिले कहे हुए भिन्न २ अङ्ग और उन्नीस मुख न रहकर सब एकमय होकर रहते हैं। जैसे कोई बाजीगर एक सुपारी लेकर उस में से १९ सुपा- रियें अलग २ निकालकर दिखादेता है और फिर उनको उठाकर एक में ही उन सब का अन्तर्भाव करदेता है, तैसे ही आत्मा जागृत् अवस्था में के पृथक २ उन्नीस मुखों का इस अवस्था के विषें एक चित्तरूप मुख में अन्तर्भाव करके वह आनन्द का उपभोग करता है और केवल आनन्दमय होकर रहता है, इस अवस्था में आत्मा को प्राज्ञ कहते हैं, यह आत्मा का तीसरापाद है। इस अवस्था में क्या सुख है! इसबात का विचार करने पर, हरएक पुरुष एकवार साधा- रण दृष्टि डालकर सहज में ही कहदेगा कि–इस में परम सुख और आनन्द ही आनन्द है,बस अब आनन्द अधिक ठौरठिकाना खोजने- की आवश्यकता नहीं रही। मधुपके चौवों की समान मसालेदार

भाँग का एक लोटा पियो या गाँजा, चंडू, अफीम आदि पदार्थों में से किसी का यथेच्छ सेवन करो और आनन्द से रातभर पडेरहो, वस आनन्द की कुछ कमी नहीं रहेगी ! यह बात क्षणभर को तो कदाचित् किसी को प्रिय प्रतीत हो परन्तु विचार दृष्टि से भ्रम ही प्रतीत होगा, क्योंकि—वह आनन्द अधिक समय रहने वाला नहीं है उस से आगे को विपत्ति ही भोगनी पडेगी, यदि उसको अधिक समयतक रहने वाला मानलिया जाय तो उस में एक बडीभारी कमी है, वह यह कि—नशे आदिका आनन्द केवल अविद्यारूप है अर्थात् आनन्दके उपभोग करते समय, 'मैं आनन्द का उपभोग करता हूँ' यह वह बिलकुल नहीं जानता है ! अत ऐसे सैंकडों वर्ष पर्यन्त उपभोग करते रहो परन्तु उसका ज्ञान नहीं हुआ तो वह आनन्द ही किस कामका ? एक मट्टीका रूपका बादशाह बनालिया और उसको ऊंचे सिंहासन पर बैठाकर तथा सुवर्ण के आभूषणों से शोभित करके मंगान के लिये १० । २० तोपों की सलामी दागदी तो क्या उस मट्टी के खिलोने को कुछ आनन्द का अनुभव होसकता है ? अर्थात् कदापि नहीं होसकता । ऐसा ही ऊपरोक्त आनन्द है, इसप्रकार देखा जाय तो सुषुप्ति अवस्था में भी आनन्द नहीं मिलता है, यह बात सिद्ध होगई । अब चौथा पाद देखो—' नान्तः प्रज्ञं न बहिः प्रज्ञं नोभयतः प्रज्ञं न प्रज्ञानघनं न प्रज्ञं नाप्रज्ञम् । अदृष्टमव्यवहार्यमग्राह्यमलक्षणमचिन्त्यमव्यपदेश्यमेकात्म्यप्रत्ययसारं प्रपञ्चोपशमं शान्तं शिवमद्वैतं चतुर्थं मन्यन्ते स आत्मा स विज्ञेयः । ' (माण्डूक्योपनिषत्) चौथी तुर्यावस्था है, इसमें अन्तः प्रज्ञ (अन्तर्वृत्ति) नहीं होता है, उभयतः प्रज्ञ (आधी जागृत् अवस्था में और आधी स्वप्नावस्था में अर्थात् (ऊँघानींदी में) नहीं होता है, प्रज्ञानघन नहीं होता है, प्रज्ञ नहीं है और अप्रज्ञभी नहीं है; किन्तु वह देखने में न आनेवाला

व्यवहार में न आनेवाला, ग्रहण करने में न आनेवाला, सकल लक्षणों से रहित, अचिन्त्य, अव्यपदेश्य (शब्दों से कहने में न आनेवाला), तीनों अवस्थाओं का साक्षी, सकल स्थूल सूक्ष्म प्रपञ्च से मुक्त, शान्त, शिव और अद्वैत है, यह आत्मा का चतुर्थ पाद है, यही आत्मा का वास्तविक स्वरूप है और यही जाननेयोग्य है। यह तुर्यावस्थाही सच्चे और अलौकिक आनन्दकी खान है परन्तु ऊपरके वर्णन को सुनकर श्रोताओं का मन घटता होगा कि—प्रज्ञ नहीं है, अप्रज्ञ नहीं है अदृष्ट है, अग्राह्य है इत्यादि विचार से हमें क्या समझें ?, वर्णन तो लम्बा चौड़ा करडाला परन्तु उस का तात्पर्य कुछ न निकला, जैसे किसी ने एकलड़के से कहानी कही कि तीन गांवथे उन में दो उजड़गये और एक बसाही नहीं जो बसा नहीं उस में तीन कुम्हार रहतेथे, उन में से दो परदेशको चलेगये और एकको अपना धंदाही नहीं आता था उसने तीन मटकी बनाईं, उन में से दो फूटगईं और एक तयार ही न होपाई। जो तयार न हुई उस में चावँल के तीनदाने पकाये, उन में से दो बाहर को उफन कर निकलगये और एक पकाही नहीं उससे तीन पाहुने जिमाने का प्रबन्धकिया उनमें से दो आये नहीं और एक सोताहि रहा, इत्यादि। यह कहानी बड़ी लंबी होगई परन्तु यदि देखाजाय तो इसमें अभिप्राय कुछभी नहींहै, ऐसा ही ऊपरका विचार है, ऐसा

(१) ऐसी कहानियें प्राचीन ग्रन्थोंमें बहुत मिलती हैं, इसी नमूने की एक लम्बी कहानी पञ्चदशी के १३ वें प्रकरण में कही है, उस को यहां विस्तार के भय से नहीं लिखते हैं 'एष वन्ध्यासुतो याति' यह श्लोक प्रसिद्ध ही है, ऐसा ही एक दूसरा श्लोक देखो—

अन्धो मणिमविध्यत्तमनङ्गुलिरावयत्।
अग्रीवस्तं प्रत्यमुञ्च तमजिह्वोऽभ्यपूजयत्। (ये गम्भ्रम...

हमारे श्रोताओंको समझनेमें आया होगापरन्तु तुर्यावस्था का प्रत्यक्ष अनुभव पानेका अधिकार मिळनेसे ही ऊपरोक्त विचारका रहस्य समझ में आवेगाछड़की छड़के बाळकपनमें बाद्दारका खेळ खेळतेहैं तो पति स्त्री,सुसर सास आदि सब व्यवहार करते हैं परन्तु उस समय उनकी समझमें उस खेळका कुछ रहस्य नहीं आताहै,उनमें से किसी सयानी छड़की का विवाह होकर वह घाद्दार को लेकर बैठती है तब वह वास्तविक रहस्य समझती है और फिर वह अपनी अन्यछोटी बहनेलियों के साथ खेळने में छज्जित होती है, अब वह छोटी छड़कियें बूझती हैं कि–तू छज्जित क्यों होती है ? तब वह कहती है कि–जब तुम्हारा विवाह होजायगा तब तुमयह सब समझजाओगी तैसे ही तुर्यावस्था में के आनन्द का अनुभव उस अवस्थामें पहुँचे विना मिलना कठिन है। उस अवस्था का अनुभव पाने के लिये आपको तीन अवस्था और तीन गुणों के पारलेपार जाना चाहिये श्रीतुळसदासजी कहतेहैं कि–"तीनि अवस्था तीनि गुण, तेहि कपासते काढ़ि। तूळ तुरीय सँवारि पुनि बाती करै सुगाढ़ि॥" (रामायण) तीन अवस्था और तीन गुणरूप कपास में से तुरीय अवस्थारूप रुई निकालकर उसकी बत्ती करै,उस से ज्ञानरूप दीपक को प्रज्वालित करनेपर ,आत्मा के ज्योतिःस्वरूप का साक्षात्कार होगा। फारसी में तुरीयावस्था के विषय में कहा है कि–'मुर्गशाखे दरख्त लाहूतेम्। गवहरे दुर्ज मंज इसारेम्।' (मामुकीमा) अर्थात् हम तुरीयावस्थारूप शाखा के पक्षी हैं और हम गुप्ततत्त्व के पेट में के मणि हैं। अरबी में भी जागृत् आदि चारों अवस्थाओं का वर्णन करा है और उन के क्रम से–मलकूत, जबरूत, नासूत, और लाहूत, यह नाम हैं। सार यह है कि–सकल तत्त्ववेत्ताओं के मत से तुर्यावस्था ही अलौकिक और अखण्ड आनन्द का स्थान है, इसकारण उसको ही पाने का उपाय

खोजना चाहिये, वह पूर्ण सुखी होने का उपाय प्राणायाम ही है, क्योंकि उस के दृढ़ अभ्यास से, प्रत्यहार से लेकर समाधि पर्यंत आगे के अङ्ग सिद्ध होकर तुरीयावस्था में के अखण्ड आनन्द का स्वाद मिलताहै, उस स्वाद को पाने की जिसकी इच्छा हो उसको अभ्यास करके प्राणायाम करने की अपनी शक्ति इतनी बढ़ाना चाहिये कि-प्रतिदिन ३२० प्राणायाम करसकै, इसप्रकार प्राणायाम और तुरीयावस्था का अति समीप सम्बन्ध है और वह प्राणायाम हमको सन्ध्याविधि में सिखायाजाता है, इसकारण संध्याही तुरीयावस्थामें लेजाकर पहुंचादेनेवालीहै तथा अलौकिक सुख और मोक्षकी प्राप्तिका साधनहै यह बात सिद्धहुई। प्राणायाम करनेवालेको जिन अहिंसा आदि धर्मों का अवश्य पालन करना चाहिये उन में से अहिंसा ब्रह्मचर्य आदि पाँच छः धर्मों का पहिले वर्णन किया ही है, आज क्षमा और सन्तोष के विषय में थोडासा कहता हूँ। क्षमा गुण मनुष्य में अवश्य होना चाहिये। परमपतिव्रता द्रौपदी के विषै यह गुण अकथनीय था, दुर्योधनादिकों ने सभा में चीरहरण करके उसकी बड़ी विडम्बना करी थी-तथापि आगे पाण्डवों के वनवासके समय, जब गन्धर्वों ने दुर्योधनादिकों को बाँधलियाथा तब द्रौपदी को उनके ऊपर दया आई और उस ने अर्जुन से विनती करी कि -आपजाकर कौरवों को गन्धर्वों से छुटालाइये तब अर्जुन भी जाने उद्यत हुए परन्तु भीमसेन ने यह समाचार पाकर बड़े क्रोध में भरगये और अर्जुन से जाने को निषेध करनेलगे, परन्तु-'क्षमा वीरों

---

(१) प्राणायामव्रतं तच्छ्रुतिशिरसि गत स्वात्मलब्धौ न चान्यत्। (श्रीशङ्कराचार्य)।

(२) यहाँ क्षमा द्रौपदी का गुण वर्णन करा है, परन्तु उसका पूरा २ आनन्द तो पास महाभारत हो तो उसको खोलकर देखने से ही आता है।

का भूषण है और अपकार को जीतने का उत्तम उपाय उपकार ही है, ! ऐसा कहकर अर्जुनगये और कौरवों को छुटाकर जिधर का तिधर भेजदिया, तब वह भी बडे खिसियाकर और गर्दन नीचे को डालकर अपने घरको चलेगये। आजकल संसार के व्यवहारमें क्षमा सत्य के स्थान में चारों ओर पॉलिसी आवसी है, परन्तु उसका परिणाम अच्छा नहीं है। यदि ध्यान करके पॉलिसी (Policy) के स्वरूपकों देखजायतो उस में कुछ अर्थ ही नहीं दीखेगा, देखो p का पेट खाली है, o सबही पोला है, l केवल खडा हुआ खम्भा ही है, ı केवल माथेपर बोझा लिये है, c बिच्छूसा है और y तो सर्वाङ्ग में टेढा है, पॉलिसी की यह दशा है। पूर्वकाल के योद्धा धर्मयुद्ध करते थे, वह दिनभर युद्धकरते थे तथापि रात्रि के समय डेरा में जानेपर उनकी प्रेम के साथ गोष्ठी होती थी। अंगरेजों ने कुछ अंश में हमारी इस नीति का अवलम्बन किया है। कुछदिन पहिले जैसे चीन में रूसकी फौज से एकसाथ सहस्रों स्त्री और बालकों का कतल हुआ था, ऐसी घृणित रीति हमारी गवर्नमेंटके यहाँ नहीं है।

अब सन्तोष के विषय में विचार करते हैं, सन्तोष एक दैवी सम्पत्ति का ही गुण है, किसी के पास याचना न करके स्वयं मिलेहुए अन्नादि पदार्थों से ही तृप्त रहना सन्तोष कहाता है, सन्तोषरूप ऐश्वर्य से जो सुखी रहते हैं वह इन्द्र के ऐश्वर्य को भी तुच्छ समझते हैं, तुलसीदा सभी कहते हैं कि–' तीन टूक कौपीन के अरु भाजी बिनलौन। तुलसी रघुवर उरवसैं इन्द्रापुरी कौन। ' यदि हृदय में रघुनाथ जीवसते हों तो चाहें कौपीन की तीन धज्जीर होजायँ और खानेको अलूना शाक ही मिले तबभी हम को सन्तोष है, इसके सामने हम विचारे इन्द्र के ऐश्वर्य को भी अच्छा नहीं समझते। सुख का मूल सन्तोष और दुःख का मूल तृष्णा है, इसकारण तृष्णा के प्रवाह में पडकर सुख के लिये अनीति का आसरा मतलो, एक नीतिमान् राजा

को रात में स्वप्न हुआ कि—अपना राज्य ऐश्वर्य और दास दासी सब नष्ट होकर मैं कंगाल बनगया, इसकारण चित्त को बडा बुरालगा परन्तु जागने पर देखा तो वह कुछ भी नहीं है, सब ऐश्वर्य पूर्ववत् अटल है तब उसको आनन्द प्रतीत हुआ । इसका ही उलटा एक अनीति से वर्त्तने वाले दरिद्र को स्वप्न हुआ कि—मैं बडाभारी राजा बन गया हूँ, सहस्रों दासदासी मेरी सेवा में तत्पर हैं और पूरा ऐश्वर्य भोगरहा हूँ, इसकारण स्वप्न में उसको बडा आनन्द हुआ, परन्तु जागने पर जैसे का तैसा भुक्क रहगया, यह देखकर उसको बडा कष्ट हुआ । इसीप्रकार इस प्रपञ्चरूपी बडेभारी स्वप्न में धर्म का आचरण उसमें करतेहुए यदि तुम को बहुतसा कष्ट आपडे तो परिणाममें सुखही होगा इसीप्रकार यदि अनीति करने परभी तुमको बहुतसा सुख दीखे तो निश्चित समझ रक्खोकि—परिणाम में तुमको दुःख ही भोगना पडेगा इसकारण तृष्णा रहित होकर अपने प्रारब्ध से जो भोग प्राप्त हो उस में ही तृप्त रहो, उसको कुछ उचित अनुचित न समझो, भगवान् पतञ्जलि योग सूत्र में कहते हैं कि–' सन्तोषादनुत्तमसुखलाभः ।' (साधनपादसूत्र ४२) । जो नित्य सन्तोष के साथ रहने का दृढ अभ्यास करता है उसकी सबप्रकारकी तृष्णा क्षीण होकर सत्त्वगुण की वृद्धिहोने से परमसुख प्राप्त होता है, उस सुखके सामने उसको स्वर्ग भी तुच्छ लगता है । सन्तोषसे रहनेवाले पुरुषका सबभरोसा ईश्वरके ऊपर ही होताहै और ईश्वर भी ऐसे अनन्यभक्त की कभी उपेक्षानहीं करतेहैं इस विषय में एक दृष्टान्त है कि– ' द्वापरयुग में श्रीकृष्ण जी का बालपन का परममित्र और परमभक्त एक सुदामा नामक ब्राह्मण था, जो कुछ प्रारब्धानुसार मिलजाता था उतने में ही निर्वाह करके वह बडे सन्तोष के साथ रहता था । उसकी स्त्री का नाम शुकी था । वह भी अत्यन्त सुशील और परमसाध्वी थी, जब उस के बालबच्चों का परिवार बढा तब घरकी अत्यन्त

निर्धनता के कारण सब को पेट २ अन्नवस्त्र मिलने में भी बड़ा भारी कष्ट होनेलगा और कईकई दिन फाके होने की पारी आकर बहुत ही दुर्दशा होनेलगी, यह बात शुकी से न देखीगई और उस को सन्तान का ऐसा कष्ट असह्य होउठा तब उसने पति से विनती करी कि-आपके बालकपने के मित्र श्रीकृष्णजी आजकल द्वारिका के राजा हैं और सकल ऐश्वर्यसम्पन्नहैं, उनके पास जाकर तुम अपनी दशा निवेदन करो तो वह तुम्हारी कुछ न कुछ तो सहायता अवश्य ही करेंगे सुदामा ने उत्तर दिया कि प्रिये ! उन के ऊपर भार डालना उचित नहीं है, परमेश्वर की कृपा से यह विपत्ति के दिन भी निकलही जायँगे । इसके सिवाय, यह ठीक है कि-वह बालकपन के मित्र हैं परन्तु अब द्वारकाधीश होगये हैं, अतः न जाने मुझे पहिचानेंगे या नहीं ? इस पर वह कहने लगी कि-यदि न पहिचानेंगे तो न सही, परन्तु यत्न तो अवश्य करना, अन्त में उस के आग्रह से और घर की अत्यन्त दुर्दशा देखकर सुदामाने श्रीकृष्णजी के पास जाने का निश्चय करलिया । रीते हाथ प्रभु के दर्शन करने को जाना उचित नहीं है ऐसा विचारकर शुकीने पड़ोसमें थोड़ेसे चौले मांगकर,कईस्थानपर थेगड़ी लगेहुए एकछोटेसे स्वच्छ वस्त्रमें बांधकर वहपोटली सुदामाजीको देदी, उसको लेकर सुदामा श्रीकृष्णजीका दर्शन करनेको बड़उत्कण्ठितहोते हुए और उनके ही चरणोंका ध्यान करतेहुए द्वारकाको चलदियोबड़े कष्ट से आधी मंजल तय करली परन्तु फिर आगे को एक पगभी रखना कठिन होगया, क्योंकि-पैरों में जूता न होने से काँटे छिद २ कर घाव होगये थे और कहीं २ रुधिर भी बहचला था, पास कुछ खाने को न होने से पेट बिलकुल कमर में जाकर लगगया था, ऐसे सब प्रकार से व्याकुल होकर ठीक दुपहरी के समय एक वृक्ष की छाया में बैठकर प्रभु की प्रार्थना करने लगा कि-हे भगवन् ! मैं जानता हूँ

अब आपके दर्शनों की मेरी इच्छा सफल नहीं होगी और मुझमें लौटकर घरको जाने की भी शक्ति नहीं है, अब मैं यहीं मरजाऊंगा, ऐसा कहकर श्रीकृष्णजी का ध्यान करतेहुए, अति थकावट के कारण नींद आगई; इधर श्रीकृष्णजी को भी बड़ी चिन्ता हुई और उसकी रक्षाकरने को वह तत्काल चलदिये, तब रुक्मिणी ने बूझा कि—महाराज ! इससमय आप ऐसे व्याकुल क्यों होरहे हैं ? तब भगवान् ने उत्तर दिया कि—इस समय अधिक कहने का अवकाश नहीं है, मेरा परमभक्त सङ्कट में पड़ा है । उस की रक्षा करने के लिये मुझको शीघ्रही जाना चाहिये । ऐसा कहकर गरुड़ पर सवार हो, जहां सुदामा सोरहाथा तहां एक क्षण में ही आपहुँचे और उस को सोतेहुए ही अपनी योगमाया के प्रभाव से द्वारका नगरी के अति समीप में लापहुँचाया और आप अपने स्थान को चलेगये । इधर सुदामाजी ने, निद्रा दूर होकर जागने पर देखा कि मैं तो जंगल में सोरहा था सो एकायकी ऐसे जगमगातेहुए देश में कैसे आगया? इस बात का उसने बड़ा आश्चर्य माना और खोज करने पर 'यह द्वारका नगरी है' ऐसा जानने पर उसको बड़ा हर्ष हुआ और भगवान् की कृपा के बिना ऐसा हो नहीं सकता ऐसा समझ कर सुदामा ने भगवान् की बहुत स्तुति करी फिर राजमहल के समीप जाकर द्वारपालों से विनय करी कि—श्रीकृष्णजी के पास समाचार पहुँचादो कि—आपका मित्र सुदामा आया है, यह सुन कर द्वारपाल हँसनेलगे और बोले कि—ऐसे ऐश्वर्यवान् श्रीकृष्णजी महाराज का मित्र, यह ऐसा दरिद्र वस्त्रहीन मनुष्य कैसे होसकता है ? ऐसा कहकर वह सुदामा को ललकारनेलगे और मारने को बेंत भी उठाया इतनेही में उन में से एक बूढे द्वारपाल को सुदामा के ऊपर दया आई और उसने समाचार पहुँचाना स्वीकार किया, तथा समाचार पातेही श्रीकृष्णजी ने सुदामाजी को भीतरलाने की

आज्ञादी और भवन में आतेही स्वयं श्रीकृष्णजी सिंहासन पर से उठकर उन के सन्मुख गये और चिपटकर मिले । तदनन्तर सुदामाजी को ऊँचे आसनपर बैठाकर आपही उनके पैर दाबनेलगे, तब तो सब को बड़ा आश्चर्य प्रतीत हुआ और द्वारपाल विचारे तो बड़े ही भयभीत हुए, सुदामाजी ने कहा कि–महाराज ! आप मुझ गरीब के पैरों को क्यों छूते हैं ? तब श्रीकृष्णजीने कहा कि–ब्राह्मणों के चरण बार २ हाथ नहीं आते हैं, इसकारण मैं ब्राह्मण के चरण के चिन्ह को भूषण समझकर सदा वक्ष स्थल पर रखता हूँ (भृगु ऋषि ने विष्णु भगवान् के वक्षःस्थलपर लातमारी यह बात पुराणों में प्रसिद्ध ही है) यह समाचार रणवास में पहुँचते ही सब स्त्रियें कौतुक मानकर देखने को आईं और जिसके शरीर का केवल हड्डियों का पिंजर शेष रहा है ऐसी दुर्बल मूर्त्ति को देखकर 'यह हमारे पति का मित्रहै' इस विषय में उनको बड़ाही आश्चर्य हुआ, परन्तु स्वयं श्रीकृष्णजी को सेवा करतेहुए देखकर वह भी सेवा करनेलगीं, तब तो सुदामाजी के द्वारका में आनेकी ऐसी धूममची उसका वर्णन नहीं होसकता। फिर श्रीकृष्णजीने बूझा कि–'मित्र तुम मेरेलिये क्या लाये हो ?' तब सुदामाजीने लजातेर अपनी बगल में से वह चौलों की पोटली निकालकर आगे रखदी तब श्रीकृष्णजी ने उस में से एक मुट्ठी भरकर चौले आनन्द से भक्षण करे और कहा कि आज पर्यन्त मैंने जो २, पदार्थ खाये हैं उन में से किसी में भी ऐसा मिठास नहीं था, फिर गुप्तरीति से कुबेर को आज्ञादी कि–सुदामाजी को एक लोक की सम्पत्ति दो और दूसरी मुट्ठी भरकर चौले खाकर फिर दूसरे लोक की सम्पत्ति देने की आज्ञा दी, फिर तीसरी मुठी भरने को हुए कि–इतने हीमें रुक्मिणी ने विचार किया कि–इस तीसरी मुट्ठी को खाने पर तो यह सारी त्रिलोकी का राज्य इसको दे डालेंगे, फिर हम सबों

को इसके घरकी दासी बनकर रहना पडेगा,ऐसा विचारकर वहँ ती-सरी मुट्ठी के चाँवले रुक्मिणी ने भगवान्‌के हाथमें से छीनलिये और सब स्त्रियों को बाँटदिये,उनको सब स्त्रियों ने बडे प्रेम के साथ खाया, फिर चारदिन पर्यंत उत्सवतासे आदर सत्कार करके सुदामाजी की इच्छानुसार जाने की आज्ञा दी।

सुदामाजी को द्वारका से चलते समय पर्यन्त आशा थी कि–श्रीकृष्णजी मुझे कुछ तो देंगे ही, परन्तु अन्त में कुछभी नहीं दिया यह देखकर मनमें अनेकोंप्रकारके विचारकरनेलगे कि–यह मेरे प्रारब्ध की बातहै ? अथवा श्रीकृष्णजीने मुझ को जान बूझकर कुछ नहीं दिया है। अन्त में सुदामाजीने निश्चय किया कि–श्रीकृष्णजी ने मुझ को कुछ नहीं दिया,यह बहुतही ठीक किया,क्योंकि उन्होंने विचाराहोगा कि कहींऐश्वर्यसे उन्मत्त होनेपर मेरे हाथसे ही इसकी भक्तिमें अन्तर न पडजाय। अन्त में श्रीकृष्णजी का ध्यान करते२ अपने नगर के समीप आपहुँचा, तहां सुदामाजी को अपनी टूटी झोंपडी, स्त्री और बाल बच्चे आदि कुछभी नहीं दीखे, तब बावले से होकर चक्कर में पडगये कि–मैं कहां आगया ? और कहां को जाऊँ ? अंतमें खोज करते२ उन को मालूम हुआ कि–यह सुवर्ण की नगरी नई बनी है और हमारे लिये एक रत्नजडित सुवर्ण का मन्दिर बना है, तहां जाते ही, सुदामाजी की स्त्री बालबच्चों सहित बडी उत्कण्ठासे बाट देखरही थी, उसने पूजन की सामग्री लेकर बडे आनन्द के साथ आरती करी और जो कुछ हुआ था सब वृत्तान्त निवेदन किया, उसको सुनकर सुदामाजी के नेत्रों में से टप२ आँसू बहने-लगे और कण्ठ गद्गद होकर रुकगया तथा मन में कहनेलगे कि प्रभुकी करणी बडी विचित्र है, फिर श्रीकृष्णजी के चरणों में सु-दामाजी का प्रेम और भी अधिक बढा, उन्हों ने स्त्री से कहा कि इस ऐश्वर्य को तू बालबच्चों के साथ में भोग और श्रीकृष्णजी की

भक्ति करती रहना, मुझे तो इस ऐश्वर्य की कुछ भी इच्छा नहीं है मैं तो अपनी पहिलीही दशा में रहकर श्रीकृष्णजी की भक्ति में समयको बिताऊँगा। ऐसा यह सन्तोषका माहात्म्य है और ईश्वर के ऊपर अपना सब भरोसा रखकर जो पुरुष सन्तोषवृत्तिसे वर्त्ताव करते है परमेश्वर भी इसीप्रकार उन की सहायता करते हैं।

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः॥

व्याख्यान छठा।

विषय-पुनर्जन्म।

यं ब्रह्मावरुणेन्द्ररुद्रमरुतः स्तुन्वन्ति दिव्यैः स्तवै
र्वेदैः साङ्गपदक्रमोपनिषदैर्गायन्ति यं सामगाः।
ध्यानावस्थिततद्गतेन मनसा पश्यन्ति यं योगिनो
यस्यान्तं न विदुः सुरासुरगणा देवाय तस्मै नमः॥

आज सनातनधर्मरूपी वर और ब्रह्मविद्यारूपी वधू के विवाहोत्सव में, सभासद्रूपी बराती प्रेमरूपी पक्वानका स्वादलेकर आनन्दके साथ हरिनाम का उच्चारण करेंगे, यह आशा है (हरेराम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण, कृष्ण कृष्ण हरे हरे) प्रिय सभासदो! सब रोगों में भवरोग बडा दुस्तर है, और रोग जीवन में एक दोवार आते हैं, परन्तु यह तो ८४ लाख वार आता है और उतनी ही वार गर्भवास का कष्ट सहना पडता है, इस गर्भवास की पीडा कुछ साधारण नहीं है। कल्पना करो कि–किसी कैदी को चारों ओर से बन्द परन्तु केवल दो तीन झरोखे वाली एक अंधेर कोठरी में, तिसपर भी एक झरोखे में को अग्नि का तीक्ष्ण ताप दूसरे में को दुर्गन्धयुक्त पदार्थों की सडाँद और तीसरे में को अत्यन्त खराब जल का प्रवाह, ऐसी दशा में यदि बन्द करके रक्खा जायतो भला उसकी क्या दुर्दशा होगी? गर्भ की थैली भी एक अं-

परा काष्ठा है, उसकी दशाभी ऊपर के कथनानुसार ही है अर्थात् एक ओर जठराग्नि है, दूसरी ओर मलमूत्रादि की सड़ाँद आदि है, ऐसे इस जेलखाने में आकर पड़ना, वह भी एकवार नहीं किन्तु अनेकोंवार ! यह दुःखकी पराकाष्ठा नहीं तो क्याहै ? जिसको मनुष्य शरीर मिला है उसको इस जन्म मरण के अति दुःखदायक चक्र से छूटने का यत्न अवश्यही करना चाहिये । कोई कहते हैं कि–मरे सो गये, फिर जन्म किसका ! और बन्धन किसका ? । कोई कहते हैं कि–आत्मा तो (नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि) शस्त्र से भी नहीं कटसकता, फिर वह चौरासी के फेर में क्यों पड़ेगा ? इसका उत्तर पीछे एकवार देहीचुके हैं तथापि इस विषय में और भी थोड़ा सा कहते हैं–चित्तवृत्ति का धर्म ही ऐसा है कि–वह जिसविषयमें आसक्त या स्थिर होती है उस के ही आकार की बनजाती है, उस के संग से आत्मा भी उसी आकार का प्रतीत होनेलगता है । देखो जब आप बाहर टहलने को जाते है तब मार्ग में किसी बाजीगर का खेल देखने को खड़े होने पर तहाँ चित्तकी वृत्ति तन्मय होकर आप को प्रतीत होता है कि–इस बाजीगर का करतब कैसा अद्भुत है ! फिर कोई सितारकी नानाप्रकार की गतें बजाता हुआ दीखजाता है तो तहाँ चित्तकी वृत्ति उस के ही आकार की होकर–आहा ! यह कैसी मनोरंजक कला है ?, ऐसा प्रतीत होता है । फिर आगे पहलवानों का अखाड़ादीखने पर तहाँ उन पहलवानों के पुष्टशरीरों को देखकर, इन के शरीर–कैसे उत्तम हैं ! ऐसा प्रतीत होता है । और भी आगे आकर एकस्थान पर पण्डितों को वेदों की ऋचाओं का अर्थ करते हुए तथा शास्त्रों के कठिन विषयों की मीमांसा करतेहुए देखनेपर, चित्तकी वृत्ति अत्यन्त तन्मय होकर आपका विचार होता है कि ऐसा ज्ञान हमको भी प्राप्त होजाय ! ऐसी चित्तकी वृत्ति दृढहुई और सायंकाल को अपने घर आकर रातभर मन में वही विचार उठते रहते ,

हैं, अन्त में प्राप्त काल होतेही एक पण्डित को बुलाकरवर रक्खा और चार पाँच वर्ष पर्यन्त पूरा २ परिश्रम करके आप भी पूर्वोक्त पंडितों की समान बनगये। सार यह है कि—चित्तकी वृत्ति जिस विषय में थोडीदेर जमी क्षणभरको उसी आकारकी बनगई और जहाँ वह अधिक दृढहुई उसी विषय के पीछे पडकर अन्त को तुम बिलकुल तदाकार होजाते हो इसको ही शास्त्र में (भृङ्गीकीटकन्याय) कहा है अर्थात् एकभौंरा अपने भक्ष्य एकप्रकार के कीडे को अपने मट्टीके घर में लाता है और प्रतिदिन उसको नोचतारहताहै तब उस कीडे के मन में रातदिन उस भौंरेकी दहाक रहकर तथा उसके और सब व्यापार बन्द होकर वह निरन्तर उस भौंरेका ही ध्यान करता रहताहै और ऐसा ध्यान करते करते अन्त में वह भौंरे के स्वरूपकोही पाजाता है, इसीप्रकार जो कोई जिस विषय का निरन्तर ध्यान करता रहता है वह सर्वथा उसी आकार का बनजाता है। वास्तव में देखाजाय तो आत्मा केवल स्वप्रकाश है; यह वृत्ति उसका स्वभाव नहीं है, भगवान् पतञ्जलि कहते हैं कि ' तदा द्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थानम् ॥ वृत्तिसारूप्यमितरत्र ॥ (योगसूत्रसमाधिपाद)। अर्थात् जब चित्तकी वृत्तियें रुकी नहीं होती हैं तब आत्मा का स्वरूप, जिस स्वरूपकी वृत्ति होती है उसी आकारका भासता है, जैसे किसी दीपका प्रकाश वास्तव स्वच्छ स्वेत होता है परन्तु उस के चारों ओर लगेहुए रंगीन काच के कारण वह लाल पीले हरे आदि रंगका भासने लगता है, तैसे ही ऊपर कहेहुए आत्मा के विषय में समझना चाहिये। इसकारण चित्तकी वृत्तियों को रोककर आत्मस्वरूप में रमण करना ही अखण्ड आनन्द वा मुक्ति का साधन है और इसके विपरीत अर्थात् वृत्तियों का निरोध न करके चाहे जिसविषय में चाहे तैसे आसक्त होने देना ही बन्धन का कारण है, यह बात स्पष्ट सिद्ध होगई और इसकारण ही शास्त्रकार—" मन एव मनुष्या

णां कारणं बन्धमोक्षयोः " ऐसे कहते हैं। इस विवेचनासे ध्यान में आगया होगा कि-मनुष्य को, 'अन्ते मतिः सा गतिः' अन्त काल में जो वृत्ति दृढ होजायगी उसी के अनुसार आगे को जन्म मिलेगा। श्रीमद्भगवद्गीता में कहा है कि-' वासांसि जीर्णानि यथा विहाय नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि। तथा शरीराणि विहाय जीर्णान्यन्यानि संयाति नवानि देही ॥ ' (अ० २ श्लो० २२) अर्थात् मनुष्य जैसे पुराने वस्त्रों को त्यागकर दूसरे नये वस्त्रोंको धारण करता है तिसीप्रकार देहधारी आत्मा, पुराने शरीरोंको त्यागकर दूसरे नये शरीरों में प्रवेश करता है। इसपर कोई कहेगा कि-एक शरीर में से निकलकर दूसरे शरीर में प्रवेश करने के लिये ईश्वरने तिनर योनियों में के बहुत से सांचे या sets तयार करस्क्खे हैं क्या ? ऐसा होनेपर वह ८४ लाख होने चाहियें इस के सिवाय, किसी को घोडे आदि की योनि में जन्म लेनाहो तो वह इस स्थूलशरीरमें से निकलकर तत्कालही उस तयार रक्खेहुए घोडे के साचे में घुसजाता है ? या एकसाथ गर्भाशय में घुसता है ? अथवा घोडे के वीर्य में घुसकर उस में से घोडी के गर्भाशयमे जाता है ? अथवा दोनों में से किसी एक के अन्न में प्रवेश करता है ? होता क्या है ? ऐसी शङ्का उठना स्वाभाविक ही है, परन्तु इसका समाधान इंग्रेजी की तीनचार स्टरंपटर पुस्तकें सीखलेने से नहीं हो सकता, इसके लिये प्राचीन संस्कृत ग्रन्थों को बहुत कुछ समझ कर अच्छे गुरु के पास पढना चाहिये, पुनर्जन्म Transmigration of Soul का विस्तार के साथ जिसमें वर्णन है, उस को 'पञ्चाग्निविद्या' कहते हैं, उसका मनन करनेपर ऊपर की शङ्का दूर होगी, इसकारण यहां 'पञ्चाग्निविद्या' के विषय में कुछ थोडा सा वर्णन करते हैं। मुख्यरूप से शरीर के दो भाग हैं, एक स्थूल और दूसरा सूक्ष्म, इनको अंगरेजीमें क्रम से Physical और Astral

कहते हैं और फारसी में 'जिस्म कासीम' और 'जिस्म लतीफ' कहते हैं। जीव एक शरीर को छोडकर दूसरा नया शरीर धारण करता है अर्थात् एक स्थूल शरीर में से निकलकर तत्काल दूसरे स्थूल शरीर मे घुसता है ऐसा नहीं है, किन्तु मरण के समय वह, एक स्थूल और दूसरा सूक्ष्म ऐसे दो शरीरों से सम्बन्ध रखताहै,जैसे श्रोताओं में से कुछ थोड़े से पुरुषों की वृत्ति इस समय दो ओर को खिचरही है.अर्थात बाहर से व्याख्यान सुनने में और भीतर से 'कहीं कोई जूते-चुराकर न लेजाय ?' इस चिन्ता में गुथी हुई है, ऐसे ही मरण के समय जीव की वृत्ति बाहर से स्थूल शरीर से और भीतर सूक्ष्म शरीर से गुथी होती है, इस सूक्ष्म शरीर को वह, अपनी वृत्तिको दृढ़ता से, जिस योनि में जन्म लेना होता है तिस योनि के अनुकूल मनोमय॰ बनालेता है। किसी भी दृश्य वस्तु को अपनी इच्छानुसार बनाने में बड़े परिश्रम पड़ते हैं परन्तु चाहे जिस वस्तु की चाहे तैसे आकार की मनोमय प्रतिमा तयार करने में कुछ कठिनता नहीं पड़ती है, इसी प्रकार होनेवाले जन्म के अनुकूल इस प्रकार के शरीर का बन्देज पक्का करेबिना देहधारी आत्मा स्थूलशरीर के सम्बन्ध को नहीं छोड़ता है। श्रीमद्भगवद्गीता में कहा है कि-"व्रजंस्तिष्ठन् पदैकेन यथैवैकेन गच्छति। यथा तृणजलौकैवं देही कर्मगतिं गतः॥" जैसे तृणजलौका अर्थात् जोंक तृणोंपर चलते में,पहिले आगे के तृणपर चरण को दृढ़ करके, फिर पहिले तृणपर धरेहुए चरण को हटाती है, तिसीप्रकार जीव सूक्ष्मशरीर से अपने सम्बन्ध को पक्का करके फिर स्थूल शरीर से सम्बन्ध को छोड़ता है, किसी घर में कुछ दिनों पर्यंत रहनेपर उस घरको छोड़कर जाना प्राणान्त समान कष्ट देता है, फिर जिस स्थूल शरीर में उसने ४०-५० या इस से भी अधिक वर्षोंतक वास किया है उसका अभिमान एकायकी कैसे छूटसकता है ? स्थूल शरीर से

वियोग होते समय भूत, इन्द्रियें, प्राण मन, बुद्धि, वासना, शुभा शुभ कर्म और अविद्या इन आठ पदार्थों की सत्ता अर्थात् सारभूत अंश Essence उस के साथ जाता है, इसको ही श्रद्धा कहते हैं और इन आठ पदार्थों को पुर्यष्टक कहते हैं। कल्पना करलो कि-किसी ने कलकत्ते में घर बनाया और वह किसी कारण से मुंबई में रहा तथापि उसका ध्यान तिस घरकी ओर रहताहै। चाहे ईंटें और कड़ियों की संख्या ठीक १ ध्यान में न हो परन्तु घर का Valuation (एकमुश्त कीमत) ठीक उसके ध्यान में रहती है। तैसे ही स्थूल शरीर में के पदार्थों का सारभूत अंश या अर्क उस के साथ रहता। अर्थात् चम्पा के फूलको कुछ देर केले के दोने में रखदियाजाय तो उसकी सुगन्ध के परमाणुओं का संस्कार जैसे उस दोने में बसजाताहै, इसको ही 'चम्पकपुटवसन' न्याय कहतेहैं इस न्यायसे स्थूल शरीर और उसके आश्रयसे भोगेहुए अनन्त विषयोंके संस्कार आत्मामें स्थित रहतेहैं। वहवासनारूप[1] भले बुरे, संस्कार और इन्द्रियें,प्राणआदि के सूक्ष्म तैजस अंशोंके साथ जीव सूक्ष्म शरीरमे प्रविष्ट होता है और इसप्रकार प्रविष्ट होतेही उस में घटीयंत्रन्याय से

---

१ मरण के समय स्थूलदेह में बाहर क्या निकलकर जाता है, और जन्म के समय उस में क्या प्रविष्ट होता है, यह प्रश्न बड़ा गम्भीर और गूढ है इसका निर्णय ऋग्वेद के आठवें अष्टक में के-यदेयमंवैवस्वतं मनोजगाम०, 'यद्दिवं यत्पृथिवी०' इत्यादि मन्त्र में वर्णन करें कुछ विषय से होता है, इसपर जितना लिखा जाय वही थोड़ा है, परन्तु यहाँ अधिक कहने का अवसर नहीं है। ऊपर के मन्त्र को ही प्रमाण रूप मानकर श्रीशङ्कराचार्यजी ने वेदान्तकेसरी ग्रन्थ में-जो सिद्धान्त लिखा है उसको हम यहाँ उनही शब्दों में कहते हैं-नायाति प्रत्यगात्मा प्रजननसमये नैव यात्यन्तकाले यत्सोऽखण्डोऽस्ति,लिङ्गं मन इह विशति प्रव्रजत्यूर्ध्व-

अगले जन्म की सब सामग्री इकट्ठी होजाती है, जैसे बड़के वृक्ष के के छोटे से बीज में, उस से उत्पन्न होनेवाले बड़ेभारी बड़के वृक्ष के गुद्दे, पत्ते, टहनियें आदि का बड़ाभारी विस्तार सूक्ष्मरूप से प्रविष्ट होता है, तैसे ही सूक्ष्मशरीर के विषें विद्यमान बीजमें होनहार जन्म का सब विस्तार प्रविष्ट होता है। आगे बड़के बीज को पवन, जल मट्टी आदि का संयोग होतेही जैसे उस में से विशाल बड़का वृक्ष प्रकट होता है, तैसे ही सूक्ष्मशरीर में के बीज से पश्चात्निसंस्कारके द्वारा अगले जन्म के स्थूल देह आदि प्रकट होते हैं। पहिले स्थूल देह को छोड़कर नवीन स्थूल देह मिलनेतक अग्नि में छोड़ीहुई आहुति की समान, मध्य में ही उसकी छः अवस्था होती हैं—१ उत्क्रांति (बाहरनिकलना), २ गति (परलोक में जाना), ३ प्रतिष्ठा (तहाँस्थिर होना), ४ तृप्ति (तृप्तहोना), ५ पुनरावृत्ति (फिरलौटना), और ६ प्रत्युत्थिति (फिर उत्पत्ति)। सूक्ष्मशरीरको लिङ्गशरीरभी कहतेहैं, इस लिङ्गशरीरको धारण करने वाला आत्मा अंगुष्ठप्रमाण होताहै कोई अंगुष्ठप्रमाणकाअर्थ—अँगूठेकी समान आकारका ऐसा करते हैं परन्तु इसकी अपेक्षा—अंगुष्ठसे अर्थात् अंगुलि से बताने योग्य ही उसका स्वरूप होताहै, ऐसा अर्थ कियाजायतो अच्छाहै, क्यों कि मूर्तिमें के पॉइंट (बिंदु) की समान उसकी स्थितिमात्र होतीहै परन्तु कोई विशेष प्रमाण न होने के कारण उसके भाग नहीं किये जासकते, वह अग्नि से जलता नहीं है, शस्त्रसे कटता नहीं है, अर्थात उसका

मर्वाक् ॥ तत्कार्यं स्थूलता वा न भजतिवपुः. किन्तुसंस्कारजातं तेजोमात्रा गृहीत्वा व्रजति पुनरिहायाति तैस्तैः सहत्र ॥ २८ ॥ आसीत्पूर्वं सुबन्धुर्भूशमवनिसुरो यः पुरोधाः. सनातेर्ना-ख्यात्कूटाभिचाराप्त खगुप्तिमिव... तमेवेत्रैः पुनरनपदैान प्राह सूक्तेन वेदस्तस्पादा:माप्युक्तं व्रजति ननु मनः क्वापिविन्नान्तरात्मा ॥ २९ ॥

स्वरूप 'नैनंछिन्दन्ति' इत्यादि श्लोकके कथनानुसार है । अब पं-चाग्निसंस्कार क्या वस्तु हैं? तिसका वर्णन करते हैं—छान्दोग्यउपनि-षद्के ५ अध्याय में द्युलोक आदि पाँच अग्नि कहेहैं, उनमें संस्कार पाकर जीव फिर स्थूलदेहधारी बनता है यहाँ इतना कहना आवश्यक है कि—यह अग्नि, व्यवहार में आने वाले अग्नि की समान हैं, ऐसा कोई न समझे, किन्तु वह केवल अग्नि का रूपक है । पहिले 'द्युलोकाग्नि' का वर्णन—असौ वावलो-को गौतमाग्निस्तस्यादित्य एव समिद्रश्मयो धूमोऽहरर्चिश्च-न्द्रमा अङ्गारा नक्षत्राणि विस्फुलिङ्गाः ॥ १ ॥ तस्मिन्नेतस्मि-न्नग्नौ देवाः श्रद्धां जुह्वति तस्या आहुतेः सोमो राजा सम्भ-वति ॥ २ ॥ अर्थात्-हे गौतम !-यह जो द्युलोकाग्नि है, आदि-त्यही उस की समिधा है, आदित्य की रश्मि (किरणें)धुआँ है, दिनही ज्वाला (लपट) है, चन्द्रमाही अंगारे और तारागण ही चिनगारी हैं । ऐसे इस द्युलोकाग्निमें पूर्वोक्त जीव किसी वनस्पति के अर्क की समान जलमय हुई श्रद्धाके साथ सूर्य की किरणों से पहिले जलकी समान खेंचाजाता है और तहां उस श्रद्धारूप आ-हुति का हवन होकर उस से सोमराजा अर्थात् सोमरूप सत्ता रची जाती है फिर उस सोमराजा के साथ वह पर्जन्याग्नि में पहुँचता है, तिसका वर्णन—पर्जन्यो वाव गौतमाग्निस्तस्य वायुरेव समिदभ्रं धूमो विद्युदर्चिरशनिरङ्गारा ह्रादनयो विस्फुलिङ्गाः ॥ १ ॥ त-स्मिन्नेतस्मिन्नग्नौ देवाः सोमꣳराजानं जुह्वति तस्या आहुतेर्व-र्षꣳसम्भवति ॥ २ ॥ पर्जन्यरूप अग्निकी, वायुही समिधा, मेघ ही धुआँ, बिजली ही ज्वाला, अशनि (वज्रपात) ही अंगारे और गर्जने के शब्दही चिनगारी है, इस अग्निमें सोमराजा का हवन हो-कर उस से वृष्टि तयार होती है । तीसरे अग्निका वर्णन—पृथिवी वाव गौतमाग्निस्तस्याः सम्वत्सर एव समिदाकाशो धूमोरा-

त्रिरर्चिर्दिशोऽङ्गारा अवान्तरदिशो विस्फुलिङ्गाः ॥ १ ॥ त-स्मिन्नेतस्मिन्नग्नौ देवा वर्षं जुह्वति तस्या आहुतेरन्नं सम्भवति २ अर्थात् पृथिवी ही तीसरा अग्नि है, सम्वत्सर ही उस की समिधा है, आकाशही धुआँ है, रात्रिही ज्वाला है, दिशाही अंगारे हैं, और अवान्तर दिशाही चिनगारी हैं, इस अग्नि में वृष्टिरूप आहुति का हवन होकर उस से अन्न (व्रीहि यव आदि धान्य) होता है । चौथे अग्नि का वर्णन--पुरुषो वाव गौतमाग्निस्तस्य वागेव समित्प्राणो धूमो जिह्वार्चिश्चक्षुरङ्गाराः श्रोत्रं विस्फुलिङ्गाः ॥ १ ॥ तस्मिन्नेतस्मिन्नग्नौ देवा अन्नं जुह्वति तस्या आहुते रेतः सम्भवति ॥ २ ॥ अर्थात् पुरुषही चौथा अग्नि है, उस की, वाणी ही समिधा, प्राणही धूम, जिव्हा ही ज्वाला, चक्षुही अंगारे और श्रोत्र चिनगारियें हैं । इस अग्नि में पूर्वोक्त अन्न का हवन होकर रेत उत्पन्न होता है । अब पांचवें अग्नि का वर्णन करते हैं कि--योषा वाव गौतमाग्निस्तस्या उपस्थएव समिद्यदुपमन्त्रयते स धूमोयोनिरर्चिर्यदन्तः करोति तेऽङ्गारा अभिनन्दा विस्फुलिङ्गा ॥१॥ तस्मिन्नेतस्मिन्नग्नौ देवा रेतो जुह्वति तस्या आहुतेर्गर्भः सम्भवति ॥ २ ॥ अर्थात् स्त्री ही पांचवां अग्नि है, उसका उपस्थ ही ईंधन है, स्त्री से अवाच्यकर्म के लिये पुरुष संकेत करता है वही धूम है, योनि ज्वाला है, अवाच्यकर्म अङ्गार है और अभिनन्द चिनगारी हैं, इस अग्नि में रेतोरूप आहुति का हवन होकर गर्भ उत्पन्न होता है । इसप्रकार द्युलोक आदि पांच अग्नियों में श्रद्धादिरूप पांच आहुतियों का हवन होकर उस से सोमआदि अनेकों रूपान्तर होते होते अन्त में इस गर्भ में आकर पहुँचते हैं, प्रत्येक स्थान पर जीवात्मा का सम्बन्ध ठीकहीहै, परंतु आत्मा सर्वत्र अविकृत रहताहै यह पीछे कहा ही है । आजकल के विद्वानोंको, सूर्यकी किरणों से जल खिंचता

है और फिर भाफरूप होकर मेघकी वर्षारूप से फिर वह शुद्धदशा में हमको प्राप्त होता है, यह वात विदित ही है, परन्तु उस का प्राणी के जन्म से कैसा क्या सम्बन्ध है और मरण के अनन्तर जीव की क्या गति होती है इसका ध्यान उसको कुछ नहीं है । इस ही वातको स्पष्ट करने के लिये एक उदाहरण देते हैं—उज्जैन के राजा का ऐश्वर्य देखकर एक पुरुष की इच्छा हुई कि मैं भी उज्जैन का राजा होजाऊँ, फिर उसने ज्योतिषी को अपनी जन्मपत्री दिखाई, उसने भी जन्मपत्री में राजयोग वताया, फिर उसको एकसाधु मिला उस से उस ने भी जन्मपत्री में राजयोग वताया, फिर उसको एकसाधु मिला, उस से उस ने बूझा कि—महाराज ! मुझे राज्यका ऐश्वर्य कैसे मिलेगा ? साधुने कहा उत्तम धर्माचरण करके बहुतसा पुण्यसञ्चय करनेपर मिलेगा । उस के चित्तपर यही वात जमगई और उत्तम धर्माचरण करते २ अन्त में मरण के समय उज्जैन का राजा होने की वृत्ति ही दृढ रही, तब उस वृत्ति के वल से उसका मनोमय शरीर बनाकर पूर्वशरीर में के संस्कार आदि सहित उस मनोमयशरीर में प्रविष्ट होगया । फिर पञ्चाग्नि के क्रम से वर्षा के द्वारा उज्जैन प्रान्त के धान्य के रूप में आया और वह धान्य राजा के भोजन करने में आया, तिससे रानी के पेट में पुत्ररूप से उत्पन्न हुआ और फिर उज्जैन का राजा होगया । यदि कोई कहे कि—वह वर्षा उज्जैन प्रान्त में ही कैसे पडी ? अमेरिका में क्यों नहीं पडी ? तो इसपर मैं कहूँगा कि—चाहे अमेरिका में ही पडी हो, परन्तु उस से उत्पन्न हुआ धान्य राल्लीब्रादर्स ने व्यवहार के लिये जहाज भरकर भेज-दिया होगा और वह उज्जैन में जाकर राजाके खाने में आया होगा। यदि इसपर भी कोई कहे कि—अमेरिका से आये हुए वह सब ही धान्य राजाने खालिये या आगे को खातारहा ? वह सब तो पूर्वोक्त पुत्र का जन्म होने में कारण नहीं होसकते, फिर शेष अन्न से क्याहुआ

इसका उत्तर यह है कि—मनुष्य के शरीर में से पसीना, मल,मूत्र, आदि जो धातुबाहर निकलते हैं उन से भी कितने ही प्राणियों की उत्पत्ति होती है, केवल पसीने से उत्पन्न होनेवाले प्राणियों की ही ओर को देखाजाय तो गिनती नहीं होसकेगी। फिर मनुष्योंका मल मूत्र भक्षण करनेवाले जो शूकर आदि प्राणी हैं उन से कितनी भ.री प्राणियों की परम्परा बढती है! कि जिसका वर्णन करना कठिन है, सार यह है कि—अपने २ कर्मानुसार जिन प्राणियों का जिन से जितना जैसा सम्बन्ध होता है, उसीके अनुसार जन्म में आकर वह व्यवहार बनता है, अतएव हमलोगों में 'ऋणानुबन्धी संसार है' ऐसी कहावत प्रचलित है। हमलोगों में बडे प्राचीन समय से पुनर्जन्म का विचार चला आता है, परन्तु और द्वीपोंके विद्वान् कुछ थोडे ही समय पहिले पुनर्जन्म को नहीं मानते थे, वह इधर Mesmerism spiritualism इत्यादि विद्याओं का प्रचार अधिक होने से पुनर्जन्म को माननेलगे हैं, इतनाही नहीं किन्तु इस विषय में अपने को दृढ निश्चय होने के लेख प्रकाशित करते हैं, अतः अब इसविषय में अधिक कहने की आवश्यकता नहीं है, तथापि साधारण दो एक बातें कहकर व्याख्यान को समाप्त करूँगा। कोई मनुष्य निरन्तर पापकर्म करता रहता है, परन्तु जन्मभर सुख भोगता है और इसके प्रतिकूल दूसरा मनुष्य निरन्तर पुण्य कर्म करता है, परन्तु जन्मभर दुःख भोगता है, ऐसा किस कारण से होता है? ईश्वर के न्यायी राज्य में गेंहू बोयेजायँतो गेंहू उत्पन्न होते हैं, बाजरा बोयाजायतो बाजरा उत्पन्न होता है, सर्वत्र ऐसीही कार्य कारणकी उत्तम व्यवस्था देखनेमें आती है,फिर इसी विषय में ऐसा विरोध क्यों रहताहै? इत्यादि सकल बातोंका समाधान पुनर्जन्म को विना मानें होही नहीं सकता। बालक जन्मतेही माता का दूध पीने लगता

(१) Researches in spiritualism नामक पुस्तक देखो।

है, तथा किसी वस्तु के हाथ में आतेही उसको मुख में देदेता है, नाक या कान में नहीं देता, यह उसका पूर्वजन्मका अभ्यासही है, नहीतो ऐसा कदापि होही नहींसकता। जो चित्तकी वृत्तियों को न रोककर मूलसे बाहरी स्थूल भोगों के जालमें फँसजाते हैं वह जन्म मरण के चक्ररूप पञ्चाग्नि में पड़ते हैं, उन में जो दुराचारी होतेहैं, वह अधोगति को प्राप्त होते है। दुराचारियोंमेंभी जो साधारण चोरी, अपेयपान, परस्त्रीगमन आदि करते हैं वह थोड़े बहुत पुण्यके प्रभाव से कदाचित् अपनी अधोगति से छूटकर शीघ्रही ऊपर चढ़ने लगते हैं, परन्तु सुवर्ण चुराने वाला, मद्यपीनेवाला, गुरुकीस्त्री से व्यभिचार करने वाला इत्यादि महापातकीतो पञ्चाग्निके चक्र में खूब फिल्टर होकर (पीसेजाकर) अवश्यही अधोगति को पाते हैं और उससे छूटने में उनको बड़ी कठिनता पड़ती है। वह महापातकी यह हैं—स्तेनो हिरण्यस्य सुरां पिबंश्च गुरोस्तल्पमावसन् ब्रह्महा चैते पतन्ति चत्वारःपंचमश्चाचरंस्तैरिति। (छान्दोग्य पञ्चमाध्याय)। १ सुवर्ण चुरानेवाला, २ मद्य पीनेवाला ३ गुरुकी स्त्री से व्यभिचार करनेवाला, ४ ब्रह्महत्या करनेवाला, और ५ इन चारों से संपर्क रखनेवाला, यह पाँच महापातकी हैं। जागने में मरण होय तोमनुष्य योनि में जन्म होता है, सोते में मरण होय तो शुद्रपक्षी आदि की योनि में जन्म होता है सुषुप्ति अवस्था में मरण होय तो स्थावरयोनि में और तुरीय अवस्थामें मरण होय तो ब्रह्मानन्द की प्राप्ति अथवा मुक्ति होती है, इसकारण तुरीयावस्था को प्राप्त करना ही जन्ममरण के चक्र को रोकने का उपाय है, यह बात आरम्भ में ही कहआये है और उस तुरीयावस्था को प्राप्त करने का उपाय प्राणायाम है, यह बात भी पूर्व के व्याख्यान में सिद्ध की है, अब संध्या प्राणायाम आदि की कितनी महिमा है यह पाठक महाशय समझही गये होंगे। जिनसे प्राणायाम आदि क्रिया-

नहीं होसकती, उनके तरने का सुगम उपाय 'भक्तिमार्ग' है, केवल एक अनन्य भक्ति ही होनी चाहिये । किसी बालक को माता खिलौनेदेदेय तो वह उन के ही खेल में लगकर बहुत देरतक मातासे अलग रहसकता है और अन्यप्रकार से कितनाही वहलाया-जाय परन्तु वह मातासे अलग नहीं रहसकेगा। इसीप्रकार संसार में के ऐशआराम के यह सब पदार्थ परमेश्वर के दिये हुए खिलौने हैं, इन के लोभ में न गुथकर जो ईश्वर के चरणों से क्षणमात्र को भी अलग नहीं रहता है वह इस जन्ममरण के चक्र से छूटजाता हैं, ऐसे अनेकों भक्तजन तरगये हैं उन्हीं में एक मीराबाई है, उसका संक्षेपसे चरित्र मैं आपको सुनाता हूँ। सूर्यवंशी चित्तौर के राजाकी 'मीराबाई' नामक एक कन्या थी वह बड़ी रूपवती और गुणवती थी। बालकपनमें एकदिनवह अपनी माताके साथ देव दर्शनको जारहीथी उसीसमय मार्गमें विवाहहोकर वधूवरकी बरातजारहीथी उसको देखकर मीराबाई ने अपनी माता से कहा कि–यह गड़बड़ी कैसी है ? यह पालकीमें कौन बैठा है और इसके पास कौन बैठी है ? तब उस की माता ने कहा कि–यह विवाह की धूमधाम है इस लड़की का विवाह होकर यह इसका पति इसको अपने घर लिवाये जारहा है,तब मीराबाईने कहा कि–माताजी ! मेरा विवाह कब होगा ? और मेरा पति कौन है ? माता ने उत्तर दिया कि–बेटी ! तेरा विवाह शीघ्रही होगा और तेरे पति गोपालकृष्ण हैं, फिर मंदिर जाकर भगवान् की ओर को अंगुली उठाकर हास्य में कहनेलगी कि–यह गोपालकृष्ण तेरे पति हैं, तब मीराबाई को यह बात प्रियलगी और तिस श्यामसुन्दर मनोहर मूर्त्ति को देखकर गोपालकृष्ण की मूर्त्ति उसके मन में ऐसी ठसगई कि–वह खेल में कि तैसीही मूर्त्ति बनाकर उसकी पूजा करती थी और चरणों में प्रणाम

१ ईश्वरप्रणिधानाद्वा ॥ (योगसूत्र)।

करती थी, उसकी इस बाललीला को देखकर सब को कौतुक लगता था। फिर कुछ समय के अनन्तर जब विवाह का समय आया तब रीति के अनुसार विवाह का व्यवहार तो होहीगया परन्तु जब सास के यहां जाने का अवसर आया तो उसने स्पष्ट कहदिया कि 'मेरे पति गिरधर गोपाल दूसरा न कोई' श्रीगोपालकृष्ण के सिवाय मेरापति दूसरा कोई नहीं है, और उनको छोडकर मैं क्षण भरको भी कहीं नहीं जाऊंगी। तब मातापिता न गोपालकृष्ण की मूर्त्ति साथ में देकर और जैसे तैसे समझाकर सुसराल को भेजा तहां पहुँचनेपर उसको बाहर की बाधा न होजाय अत उस से तहाँ के इष्टदेव वृद्धामंगल की चरणवन्दना करने को कहा,परन्तु उसने स्पष्ट उत्तर देदिया कि-मैं गोपालकृष्ण के सिवाय दूसरे किसी के चरण न पडूगी, तब सासने आँख टेढी करके कहा कि- यह बहू बड़ी हठिन है, यह तो यहां निर्मन के लक्षण नहीं दीखते फिर जब तरुणहुई तब तो संसार में उसका जरामी, चित्त नहीं लगताथा, और वह लौकिकरीति के अनुसार अपने पतिसे वर्त्ताव नहीं करतीथी, यह देख और बहुत कुछ धमकाकर सास ससुर ने उसको गोपालकृष्ण के मंदिर में ही रखादया और अपने पुत्रका दूसरा विवाह करदिया। इधर मीराबाई गोपालकृष्ण की पूरी २ सेवा करनेलगी और उनके भजन पूजन में ही सब समय को आनन्दपूर्वक बितानेलगी, यह समाचार चारों ओर फैलतेही दूर २ के साधुसन्त उस के दर्शनों को आनेलगे और वह उनके साथ मिल कर भजनकीर्त्तन करनेलगी, तब किन्हीं कुटिल पुरुषोंने 'यहसाधु सन्त आदि परपुरुषों से सहवास करती है' यह बात हमारे राजपूत कुलको कलङ्क लगानेवाली है, ऐसा उसके साससुर के चित्त में भरकर चारों ओर से कोई न आसके ऐसा पहिरा बैठलवा दिया और उसके सुसर ने विष का कटोरा तयार करकर मगवाके

का चरणामृत बनाकर मीराबाई को पिलाने का विचारकिया, राजा की आज्ञा से उसकी नन्द विष का कटोरा लेकर मावज के पास गई और चरणामृत बनाकर कटोरा मीराबाई के सामने करते ही उसको दया आई कि—मैं निःष्कारणही इसके प्राण लेतीहूँ, यह अच्छा नहीं है, अन्त में उस से रहा नहीं गया और सब समाचार सत्य २ मीराबाई को सुनादिया और कहा कि—इस विष को तू पिये मत, तब मीराबाई ने कहा कि—यह श्रीगोपालकृष्ण का चरणामृत ही है। यमुना के कुंड में कालिय सर्प के फनपर नाचने वाले श्यामसुन्दर प्रभु की मूर्त्ति मुझको इस में दीखती है, अतः मैं इसको अवश्य पीऊंगी तू भय न मान, ऐसा कहकर उसने वह विष का कटोरा गटगट करके पीलिया प्रभुकी पूर्ण कृपा होनेपर विषकी बाधा कैसे होसकती है ? सो वह विष अमृतरूप होगया।

चरणामृत बुद्धि विषदियो भयो सुमंगलमूल।

नन्द तो घरको चलीगई और इधर मीराबाई भक्तिरस में निमग्न होकर प्रभु से प्रार्थना करनेलगी कि—हे भगवन् ! भक्तके प्रेम के साथ पुकारनेपर आप दौड़कर आतेहैं, यह आप का प्रण है और मैंने तो बालकपनसे ही आप को मन में वरलिया है तथा रोज पुकारती हूँ तथापि एकदिन मुझ को आप का दर्शन नहीं हुआ, इससे मैं निःसन्देह बड़ी पापिनी हूं, अब यदि आप दर्शन नहीं देंगे तो इस शरीर को नहीं रक्खूंगी। विष पीलिया है, यदि इसी से मेरे प्राण निकलगये तो बहुत अच्छा है, क्योंकि मैं शीघ्रही आपके चरणों में पहुँचजाऊंगी, ऐसी प्रार्थना सुनकर प्रभु को करुणा आई और उस के ऊपर अनुग्रह करने की इच्छा से श्यामसुन्दररूप धारकर रात्रि के समय मीराबाई की इच्छानुसार प्रत्यक्ष दर्शन दिया और उस के साथ गुट्टे खेलने का प्रारम्भ किया और प्रतिदिन ऐसाही करने लगे तब मीराबाई को अपरिमित आनन्द प्राप्तहुआ। एकदिन दोनों के

गुर्ङ्ख खेकते में खेलने की गड़बड़ पहिरेवाले के कानों में पडगई सो उस के हृदय में धधका बैठगया और उस ने विचारा कि अब मेरी नौकरी जाने में कोई सन्देह नहीं है। ऐसी घोर रात में चारोंओर पक्का बन्दोवस्त होतेहुए यहां और पुरुष कैसे आगया। फिर उस ने बाहरके फाटकपरसे झांककर देखा तो तहां पुरुष तो कोई नहीं दीखा परन्तु छःतीन, नौ, पौबारह, कच्चेबारह, इसप्रकार पुरुषका शब्द सुनाई आता था, यह दशा देख पहिरेदार, भौंचक्के, होगये और कुछ निश्चय नहीं करसके; अन्त में उन्हों ने विचारा कि- जिसप्रकारभी हो यह समाचार राजा के पास पहुँचाना चाहिये प्रातःकाल को समाचार पाते ही राजा अत्यन्त क्रोध में भरगया और उस रात को हाथ में तलवार लेकर मन्दिर में आया और जोरसे द्वारको खोलकर तहां मीराबाई और दूसरा कोई पुरुष खेलरहे हैं ऐसा देखकर उन दोनों के ही ऊपर तलवार खेंचकर दौड़ा, उसीसमय गोपालकृष्ण उठकर भागनेलगे तबतो मीराबाई ने उनकी कमरकी कौलिया भरकर 'अब इससमय मुझे कहां छोडकर चलदिये ?' ऐसे विलाप करती हुई उन के पीछेपीछे चली और अन्त में वह दोनों पाषाणमय गोपालकृष्णकी मूर्त्ति में घुसकर अन्तर्धान होगये। प्रवेश करते २ मीराबाई की साडी का थोडासा टुकडा तैसाही बाहररहगया, राजा भौंचक्कासा होकर इधर उधरको देखनेलगा, परन्तु तहां पुरुष न स्त्री कोई भी नहीं है, इस कारण मूर्त्ति के समीप जाकर देखनेलगा वह साडी का कोना बाहर दीखा, इससे तो वह और भी आश्चर्य में पडगया तथा कहने लगा कि मैं स्वप्न में हूं या मुझ को भ्रम होगया है ? मीराबाईका कहीं पता नहीं है, केवल मूर्त्तिही दीखरही है और उस में साडी का कोना बाहर दीखरहा है, इसप्रकार वह बड़ी ही उलझन में पडगया और कहनेलगा कि यहा केवल साडी ही है या नारीभी

है ! साडीमी तो पूरी नहीं केवल किनारी है ! जब राजा ऐसी भ्रान्ति में पड़ा तब उसको आकाशवाणी हुई कि ' यह तेरी पुत्रवधू भक्तशिरोमणि,परमपवित्र और दोनों कुलों को तारनेवाली थी,वह अब गोपालकृष्ण में समागई है , ऐसा शब्द सुनकर राजा जहां का तहाँही निश्चेष्ट होकर बड़ा दु.खित होनेलगा और मैं कैसा अधम हूँ, कितना पापी हूँ, कैसे घोरकर्म में प्रवृत्त हुआ, ऐसा पश्चाताप कर अपने पेट में उसी तलवार को भोंकने लगा, इतने ही में उसके ऊपर भी अनुग्रह करने की इच्छा से श्रीकृष्णजी ने अपनारूप प्रकट करके उसका हाथ पकड़लिया और उसको भी कृतार्थ किया,क्यों कि—वह राजा भी बड़ा प्रेमीभक्त था इसकारण ही मीरा के साथ खेलते में और भागनेमें दर्शन हुआथा, केवल औरों के कहने से ही वह इस घोरकर्म में प्रवृत्त हुआ था । सार यह है कि–' ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम् ।' यह तो भगवान् का वचन है, इसके अनुसार ही भक्तों के मनोरथ पूर्ण करते हैं ।

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ।

व्याख्यान सातवाँ ।

विषय–सन्ध्या के द्वारा आरोग्य की वृद्धिः ।

जटाकटाहसम्भ्रमभ्रमन्निलिम्पनिर्झरी विलोलवीचिवल्लरीविराजमानमूर्धनि ।
धगद्धगद्धगज्ज्वलल्ललाटपट्टपावके किशोरचन्द्रशेखरे रतिः प्रतिक्षणं मम ॥१॥

आज सनातनधर्मरूपी सूर्य का उदय होनेसे अज्ञानरूपी रात्रि नष्ट होकर पाखण्डरूपी चन्द्रमा निस्तेज होगया है और कपोलकल्पित अनेकों मतरूपी तारागण सर्वथा लुप्त होगये हैं और हमारे सभासदों के हृदयरूपी कमल प्रफुल्लित होरहे हैं, अब थोड़े ही समय में उन कमलों के ऊपर सदा सर्मी के मनोरूपी भौंरे हरिनामरूपी गुंजार करेंगे, प्रियमित्रों कहो एकवार–हरेराम हरेराम राम

राम हरे हरे । हरेकृष्ण हरेकृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे । आज के व्याख्यान का विषय संध्याके द्वारा आरोग्य की वृद्धि है, पहिले एक स्वतंत्र व्याख्यान में, संध्या करने से आयु कैसे बढती है, इस बात को विस्तार के साथ दिखाचुके हैं, उसका और आज के व्याख्यान का बहुत ही समीप सम्बन्ध है, बल्कि आज के व्याख्यान को उस की पूर्त्ति ही समझना चाहिये, कि उस दिन की बातें ध्यान में होने से आज के व्याख्यान को समझना कठिन ही पडेगा। उसदिन आयु की वृद्धि का उत्तम उपाय प्राणायाम बताया था और आज यह दिखाना है कि वही प्राणायाम शारीरिक रोगों का नाश करके और आरोग्यको बनाये रखने में समर्थ होकर आयु को बढ़ाता है। आसनके विना प्राणायाम सिद्ध नहीं होता और प्राणायाम की सिद्धिके विना सच्चिदानन्द परमात्मा का दर्शन नहीं होसकता। साधारण व्यवहार में ही देखलीजिये यदि किसीसमय राजा का दर्शन करना हो तो दरबार में किसी विशिष्ट आसनैपर बैठना पडता है फिर जो राजाधिराजोंका राजा और अनन्त ब्रह्माण्ड का स्वामी है उस परमात्मा का दर्शन करने में विशेष आसन की आवश्यकता क्यों नहीं होगी? । आसन पहिले कहेहुए ब्रह्मविद्या के २६ अक्षरों में से २१ वां अक्षर है और प्राणायाम का पूर्व अंग है, जितनी प्राणियों की जातियें हैं उतने ही प्रकार के अर्थात् ८४ लाख आसन हैं ।

१ जिससे शरीर स्थिर रहकर सुख प्राप्त होता है ऐसे बैठने को आसन कहते हैं वह दो प्रकार का है एक बाह्य और दूसरा शारीर, बाह्यासनके सम्बन्ध से पहिले नीचे कुशासन, उसपर मृगछाला का आसन और उसपर कम्बलासन होना चाहिये, वह न अतिऊँचा न अतिनीचा इत्यादि बहुत से नियम कहे हैं, शरीर आसनोंका विस्तार के साथ वर्णन हठयोगप्रदीपिकाआदि ग्रन्थों में है।

उन सब का भेद एक भगवान् शिवजी ही जानते हैं, उन्होंने पार्वती के विनती करनेपर उन ८४ लाख आसनों में से मनुष्यकी साधना के योग्य ८४ आसन कहे और उतने भी सब से नहीं सध सकेंगे, इसकारण उनका फिर संक्षेप करके १ सिद्धासन, २ पद्मासन, ३ भद्रासन, और ४ सिंहासन यह चारही मुख्य आसन कहे उन चारों में भी सिद्धासन,को श्रेष्ठ कहाहै। उससे योग शीघ्रही सिद्ध होता है और वह सब सिद्धों का माननीय है, इसकारणही उसको सिद्धासन कहते हैं। कोई उसको ही, उस से शरीर वज्र की समान होजाता है, इसकारण वज्रासन और उसके द्वारा मनुष्य संसार से मुक्त होता है इसकारण मुक्तासन, तथा उसके द्वारा गुप्त विद्या का द्वार खुलजाता है इसकारण गुप्तासन भी कहते हैं। यह सुनकर आजकल के विद्वानों में से कितनों ही के मुख से—what troublesome task isthis ? कौन कष्ट उठावे ? कौन बैठाहुआ सिद्धासन पद्मासन की कसरत करता रहे ?, जिस में आराम मिले उसी बैठक से बैठना चाहिये, ऐसे बातें निकलेंगी, और उनका ऐसा कहना स्वाभाविकही है, क्योंकि—उनका प्रतिदिन का वर्त्तावही अत्यन्त शिथिल और निरंकुश होता है। हिन्दुशास्त्र में शौचविधि और मुख को धोना आदि क्रिया सावकाशपने से करे, उस में समय का संकोच न करे, तथा अमुक अङ्ग में अमुक समयपर मट्टी लगाने से बाह्य शुद्धि होती है, इत्यादि छोटी मोटी बातों के भी नियम कहे हैं, परन्तु वह नियम इन लोगों को मूर्खता के प्रतीत होते हैं क्योंकि—उन नियमों से यथेच्छाचार करने का अवसर नहीं मिलता इन लोगोंका लघुशङ्का(पेशाब)करना प्रसङ्गानुसार खड़े २ही होजाताहै वाहिर्दिशा (पाखाने को जाने) में भी ऐसीही गड़बड़ी है अर्थात् मुख में सिगरेट और आधामल वाहर तथा आधा मल पेट में होता है। हाथमें मल का संसर्ग न रहजाय इसकारण मट्टी से मलकर धोना

कहा है, परन्तु इनको मट्टी की कुछ आवश्यकता नहीं पडती है। दाँत साफ करतेहुए तो शूकरवालोंका ब्रुस ऊपर रगडलिया, जीभ के ऊपर का मैल दूर करने की तो इनको आवश्यकता ही नहीं क्योंकि—पाखाने से आये कि—चाहठंढी होजाने की चिन्तापडी, जब टेबुल पर चाहपानी आदि इच्छित काम से निवटगये, फिर नाइरसे खौ किया हुआ कोट पतलून वगैरा फैशन के कपडे तथा बूट वगैरा चढाकर चारयारों में बडी शानशौकत के साथ मूछोंपर हाथ फेरते हैं Iam theprofessor of philosophy passed in ox for d university ऐसी प्रतिष्ठा पायेहुए हैं। सार यह है कि—यहलोग धर्मशास्त्र के नियमों से बहुतही दूर हैं, अधिक क्या कहाजाय जब विरुद्धदिशा के जानेवाले हैं तो उनको सन्ध्या प्राणायाम आदि क्रिया कष्टदायक क्यों न प्रतीत होंगी ? योगविद्या हमारे घरकीहै इसकारण 'अतिपरिचयादवज्ञा' इस कहावतके अनुसार हम उधर को कुछ भी ध्यान नहीं देते हैं, परन्तु दूसरे टापुओं के लोग जिन को थोडासाभी इस क्रिया का स्वाद मिलजाता है वह फिर इसका पीछा नहीं छोडते। पहिले मंसूर नामक एक फकीर अरब से चलता २ मुलतान में आया, तहाँ एक योगिराज से भेटा होनेपर मंसूर ने उनसे योगसीखना चाहा, तब समदृष्टि योगिराजनेभी उस के ऊपर कृपाकरके योगकी कुछ बातें सिखाईं। उस योग के प्रभाव से मंसूर को साक्षात्कार हुआ और वह चारों ओर ज्योतिःस्वरूप देखने लगा तथा मुख से अखंड 'अनलहक' (अहं ब्रह्मास्मि) ऐसा कहने लगा, अपने देश में जानेपर भी उसकी यही दशा रही। मुसलमानी धर्म के अनुसार अपने को ईश्वर स्वरूप मानना पाप है, इसकारण तहांके लोगों ने बादशाह से मंसूर की शिकायत करी, बादशाहने मंसूरके पकडने के लिये अपने पुत्रको आज्ञा दी, वह जब पकडने को गया तबही मंसूर योगकेप्रभाव से अन्त-

धीन होगया, इसप्रकार कईवार उस के पकड़ने का उद्योग निरर्थक गया। अन्त को मंसूर अपने आपही बादशाहके पास चलागया, बादशाह ने उस को सूलीपर चढ़ानेका हुक्म दिया, तब उसने कहा 'अनलहक' प्रत्यक्ष सूलीपर चढ़ाने के समयभी उस के मुख में 'अनलहक' था और तहां उस के शरीर में से जो रुधिर की बूँदें टपकीं उन में से भी 'अनलहक' यही शब्द निकलनेलगा, तब बादशाह ने उस के शरीरकी राख करवाकर, समुद्र में फिकवाने का हुक्म दिया, उस राखमें से भी यही ध्वनि निकलनेलगी, वह जल किसी कन्याके पीने में आया, तदनन्तर उस के जो लड़का हुआ वहभी बड़ाभारी साधु हुआ। हमारे इधरभी सिद्ध पुरुषों के हाथ से ऐसे अनेकों चमत्कार हुएहैं परन्तु सिद्धदशाको पानेका मूलकारण आसन प्राणायाम आदि क्रिया ही है, अतः उधर को ध्यान न देना हमलोगोंको उचित नहीं है। अब हमारे प्रस्तुत विषय में सिद्धासन जैसा श्रेष्ठ है वैसा ही सुलभ अर्थात् सबके साधने योग्य है, उसको लगाने की रीति- "योनिस्थानकमङ्घ्रिमूलघटितं कृत्वा दृढं विन्यसेन्मेढ्रे पादमथैकमेव हृदये कृत्वा हनुं सुस्थिरम्। स्थाणुः संयमितेन्द्रियोऽचलदृशा पश्येद्भ्रुवोरन्तरं ह्येतन्मोक्षकपाटभेदजनकं सिद्धासनं प्रोच्यते॥" अर्थात् दाहिने चरण ऐंड़ी गुदा और लिंग के मध्यभाग में रखकर और बायें पैरकी एड़ी लिंग के ऊपरके भाग में रखकर अपनी ठोडी को हृदयके समीप रखकर दृष्टि को दोनों भौंके मध्यभाग में रक्खे और जैसे वृक्ष का ठूंठ निश्चल रहता है तैसे सब इन्द्रियों को वशमें करके अत्यन्त स्थिर रहे, इसका नाम सिद्धासन है। इससे मोक्ष का द्वार खुलजाता है। इस एक सिद्धासन का अभ्यास करलेने से ही दूसरी कोई भी योगक्रिया विना करे ही बारहवर्ष में योगसिद्ध होजाता है। इसके लगानेपर शरीर समतोल रहता है, श्वास एकसमान चलते हैं, देहको कष्ट न देकर बहुत

समयतक बैठाजासक्ता है वृत्ति स्थिर रहतीहै और रुधिरकी गति इकसार होनेसे शरीर निरोग रहता है, एक सिद्धासन के उत्तमता से सिद्ध होजानेपर मूलबन्ध आदि तीनों बन्ध अपने आप सिद्धहो जाते है, इसकारणही हठयोग प्रदीपिका आदि योगशास्त्र के ग्रन्थों में इसकी बड़ी भारी महिमा कही है। आसनसिद्ध होनेसे प्राणायाम सिद्ध होनेमें अड़चन नहींपड़ती है। प्राणायामकी कुछ रीति पहिले व्याख्यान में कहीथी, उसका कुछथोड़ासा और विचार करके, उसके द्वारा शरीरके रोग कैसे दूरहोते हैं सो दिखाते है। प्राणं चेदिडया पिबेन्नियमितं भूयोऽन्यया रेचयेत्पीत्वा पिङ्गलया समीरणमथो बद्ध्वा त्यजेद्वामया। सूर्याचन्द्रमसोरनेन विधिनाऽभ्यासं सदातन्वतां शुद्धा नाडिगणा भवन्ति यमिनां मासत्रयादूर्ध्वतः ॥ अर्थात यदि नासिका के वाम छिद्र से पूर्वकों करके प्राणवायु पेट में रोका होतो, तहाँ नियमित समय पर्यन्त कुम्भकवत के तदनन्तर उस प्राणवायु को नासिका के दाहिने छिद्र से धीरे २ बाहर को छोडे। और यदि नासिका के दाहिने छिद्र से पूरककरके प्राणवायु पेट में रोका होतो तहाँ नियमित समय पर्यन्त कुंभक करके फिर नासिका के वाम छिद्रसे धीरे २ वायु बाहर को छोडे (पूरक को शान्तपने से करो चाहे शीघ्रता से करो, कोई हानि नहीं है क्यों कि—पूरक को शीघ्रता से करने में कोई दोष उत्पन्न नहीं होता है परन्तु रेचक को शान्ति के साथ ही करना चाहिये, क्योंकि—रेचक में शीघ्रता करने से शरीर का बल घटता है) इसप्रकार अधिक २ और नित्य अभ्यास करने वाले तथा उत्तमता के साथ यम आदिका पालन करने वाले योगियों की सब नाडियें तीन महीने में शुद्ध होजाती हैं, उनका सब मल दूर होजाता है। इसप्रकार नाडियों के मल रहित होने पर एकायकी किसी बडे रोग के होनेका भय नहीं रहता है। आप देखलीजिये कि—हम से संन्यासियों को कभी तेल

नहीं, गरम पानी नहीं, दूसरी आरोग्य रखने वाली व्यवहार की वस्तु नहीं है तथापि हमारे आरोग्य की रक्षा कैसे होती है ? यह हमारा आरोग्य रस केवल एक प्राणायाम के ही कारण है। शरीर की रक्षा के लिये अन्न आदि पदार्थों की अत्यन्त आवश्यकता है परन्तु उन का सेवन नियम से करना चाहिये। ऐसा न करने से शरीर में अनेकों प्रकार के विकार उत्पन्न होकर योग क्रिया में बाधा पड़ती है, इसकारण ही मिताहार को ब्रह्मविद्या के २६ अंगों में से १ अंग कहा है। कोई पदार्थ वातको बढ़ाने वाले, कोई पित्त को बढ़ानेवाले और कोई कफ को बढ़ाने वाले हैं। पेटकी अग्नि दुर्बल होकर भोजन के पदार्थों का अधिक सेवन करने पर तिन वात आदि के दोषों का प्रकोप होकर शरीर में अनेकों प्रकार के रोग उत्पन्न होजाते हैं तीनो दोषों के कुपित होनेपर होनेवाले रोग को संनिपात कहते हैं और तीनों दोषों के समान स्थिति में रहनेपर शरीर नीरोग रहता है। शरीर आत्मा के रहनेका घरहै, पचन क्रिया उसघरका पाया और शुक्र धातु ब्रह्मा है, शुक्र के ठीक रहनेसे सबठीक रहता है और उस के बिगडने का कारण उष्णताहै, वह उष्णता शरीरके भीतर भरेहुए मलसे होतीहै, किसी मोरी में रोज अन्न का अंश जाय और उसको धोकर साफ न किया जाय तो कुछ दिनों में उस में मल इकट्ठा होकर और उष्णता (सड़ाँद) उठकर सूक्ष्म कीडे दीखने लगेंगे, तिसीप्रकार जठराग्नि के दुर्बल होनेपर खाये हुए अन्न में से बचे रहे हुए अन्न के रस के परमाणु तिन २ नाडियों में स्थान २ पर इकट्ठे होकर उन में से उष्णता उत्पन्न होती है और फिर कुछ दिनो में सूक्ष्म जन्तु उत्पन्न होकर नाना प्रकार के रोग उत्पन्न होजाते हैं। इसकारण *रोगों का बीज नष्ट करने के लिये, शरीर के भीतर जमने जाने* वाले मल का समूल नाश होनाचाहिये। डाक्टर हकीम आदि के उपायों से वह मल तैसे निर्मूल नहीं होसकते। इसकारणही आज

कल डाक्टर हकीम और वैद्यों का यद्यपि सुकाल है तथा नगरों में मड़कदार साइनबोर्ड गली २ झलकते दीखते हैं तथापि रोगों की प्रबलता कम न होकर उलटी बढ़तीहुई देखने में आतीहै और मनुष्य दिन २में अत्यन्त दुर्बल होते चलेजाते हैं। प्रिय धार्मिकों! शरीर के भीतर के किसी भी अत्यन्त सूक्ष्मभाग में से मल के निकालने को प्राणायाम की समान दूसरी कोई रामबाण औषधि नहीं है और इसकारणही प्राणायाम आरोग्यवृद्धि का मुख्य कारण है। अब प्राणायाम से मल कैसे निकलता है ? यह बात संक्षेप से कहताहूं, किसी सुगन्धित पदार्थ का सुगन्ध या दुर्गन्धित पदार्थ का दुर्गन्ध आना, कहिये—तिन २ पदार्थों में के अत्यन्त सूक्ष्म अंश अर्थात् परमाणुओं का हवा में होकर हमारी घ्राणेन्द्रिय पर्यंत आकर पहुँचना है। यह सृष्टि निराले २ पदार्थों के असंख्य परमाणुओं से भरीहुई है, जिस शामियाने के नीचे इस समय हम बैठे हैं, उस के ऊपर नीचे चारों ओर अत्यन्त परमाणु भरेहुए हैं, वह इससमय हम को दीखते नहींहैं, परन्तु प्रातःकाल के समय सूर्योदय होनेपर शामियाने के एक छिद्र में को होकर सूर्य की किरणें भीतर पड़नेपर उस तिरछी प्रकाशमय रेखामें असंख्यों अणु दीखने में आते हैं, कहीं कपूर की डली रखदीजाय तो थोड़े ही दिन में उड़कर उसका पता भी नहीं रहेगा, इतनी बड़ी कपूर की डली कहाँ जाती है है। अर्थात् वह नष्ट नहीं हुई किन्तु परमाणुरूप से पवन में मिलगई। यह परमाणुओं की कल्पना शरीर के भीतरी भाग के साथभी लगीहुई है, जैसे ब्रह्माण्ड में करोड़ों परमाणु उड़ रहे हैं, तैसे ही शरीररूपी पिंड में भी उड़रहे हैं इन परमाणुओं के एक स्थान से दूसरे स्थानपर जाने का कारण वायु है। प्राणायाम करतेमें, पहिले मूलबन्ध से अपानवायु के ऊपर को चढ़नेपर उस वायु के साथ, मूलधार में और उसके

ओरेघोरे की नाड़ियों में भरेहुए मळ के परमाणु ऊपर षट्दलचक्र में पहुँचते हैं, वह परमाणु तहां के मळ के परमाणुओं के सहित वायु के साथ, उसके उपर के चक्र में अर्थात् दशदलचक्र में पहुँचते हैं। इसी क्रम से नीचे के भाग में के मळ के परमाणु अपानवायु के बळ से ऊपर के भाग में और ऊपर के सकलभागों में के मळ के परमाणु प्राणवायु के बळ से नीचे के भाग में खिंचेजाकर और प्राण अपान के संयोग के समय वह इकट्ठे होकर रेचक के द्वारा शरीर से बाहर निकालदियेजाते हैं, इसप्रकार एकवार इड़ासे और एकवार पिंगळा से रेचक करनेपर, अग्नि में तपाकर निकाले हुए सुवर्ण की समान सब शरीर में की नाड़ियों की उत्तम शुद्धि होती है और ऐसी शुद्धि वारंवार की जाय तो, रोग उत्पन्न होने का कारणही नहीं रहताहै। रात्रि में मैथुनके समय वीर्यके अपने स्थान से चलायमान होने के कारण शरीरमें जो अशुद्धता उत्पन्न हुई, उसको दूर करने के लिये अठारहवार प्राणायाम करना लिखा है। इसप्रकार जप होम पूजा आदि हरएक धर्मक्रिया में हमारे शास्त्रकारों ने जो प्राणायाम का सम्बन्ध जोड़दिया है, उस का बीज यही है।

कोई आजकल के विद्वान् डाक्टर आदि कहेंगे कि–यहसब मूर्खता है, वायुके आश्रय के विना जीवित रहनाही असम्भव है, फिर उस को रोककर घोटने से रोग कैसे दूर होसकते हैं ? उलटे रोग बढ़ेंगे। इसका उत्तर पहिले एकवार देचुके हैं और आज भी कहते हैं कि–विधिपूर्वक प्राणायाम का अभ्यास करनेवाले को शारीरिक रोगोंकी बाधा तो होती ही नहीं है, परन्तु जैसे२प्राणायाम का अभ्यास बढ़ताजायगा तैसे२ भूँख, प्यास, सरदी, गरमी आदि द्वन्द्वों को जीतकर पञ्चभूतों के अधिकार के पार पहुँचजाता है अर्थात् उस के ऊपर पञ्चभूतों की सत्ता बिलकुल नहीं चलती और खेचरी मुद्राके प्रभावसे

साधकको अमृतपान मिलने के कारण वह प्राणवायु के आश्रय के विनाही कितने ही वर्षोंतक आनन्द के साथ रहसकता है, यह बात अनुभव के बिना समझमें नहीं आसकती , तथापि जिनको उतनी शक्ति नहीं है उन के लिये साधारण व्यवहार में की एकबात कहता हूँ । जिनकार्यों से श्वासों का प्रमाणसे अधिक व्यय होताहै उन कार्यों को करनेपर अथवा प्रातःकाल के समय उठनेपर अपने शरीर को तोले तथा स्नान सन्ध्या और कुछदेर प्राणायाम करके फिर शरीरको तोले तो प्राणायाम करने के अनन्तर कुछ अधिक वजन प्रतीत होगा तब इससे प्राणायाम का शरीरके ऊपर क्या असर होता है ? इसका निश्चय होजायगा । प्राणायाम करना हो तो बड़े धैर्य के साथ करे, नहींतो खाँसी दमा आदि अनेकों रोगों की उत्पत्ति होकर आयके स्थान में हानि होना सम्भव होता है । केवल हठयोगसे रुकाहुआ प्राण, रोमों के छिद्रों में को बाहर निकलता है, उस से कोढ़ आदि रोग होजाते हैं, इसकारण गुरुसे भली प्रकार सीखकर जैसे सिंह हाथी व्याघ्रआदि प्राणियों को अपनी युक्ति से वशमें कियाजाता है तैसे ही धीरे२ प्राणको वशमें करलेना चाहिये । गुरुशिष्यभावकी परम्परा बिगडजाने से आजकल योगमार्ग में अनेकों अड़चन होगई हैं । पूर्वकाल में गुरु--अखण्डमण्डलाकारं व्याप्तंयेन चराचरम् । तत्पदं दर्शितं येन तस्मै श्रीगुरवेनमः अर्थात् सूर्यमण्डल की समान अखंडतेजोमय और चराचर विश्व में व्यापेहुए आत्मस्वरूप का साक्षात्कार कराने में समर्थ होते थे और लोग उन के चरणों में पड़ते थे, परन्तु ऐसे गुरु आजकलके लोगों के उपकारक नहीं हैं, आजकल तो औरही प्रकार के गुरु चाहियें,

(१) प्राणायामादियुक्तेन सर्वरोगक्षयोभवेत् । अयुक्ताभ्यासयोगेन सर्वरोगसमुद्भवः हिक्काश्वासश्च कासश्च शिरःकर्णाक्षिवेदनाः । भवन्ति विविधा रोगाः पवनस्य प्रकोपतः ॥ (हठयोगप्रदीपिका)

उनका वर्णन इस ऊपरके श्लोक से ही होता है, इस श्लोक का दूसरा कहना चाहिये, वह यह है कि–अत्यन्त गोलाकार और अखण्ड (फूटाहुआ नहीं) तथा जिसकी सत्ता सब जगत् में फैली है ऐसा जो तेजोमय तत्त्व अर्थात् कलदार रुपया उसका पद अर्थात् ठौरठिकाना अर्थात् मिलने का मार्ग, जो गुरु दिखाता है उसको ही आजकल के लोग साष्टांग प्रणाम करेंगे। साधकको उचित है कि–श्रेष्ठगुरु से प्राणायाम की रीति उत्तमता के साथ सीखकर प्रातः मध्यान्ह, सायंकाल के और आधीरात के समय अस्सीपर्यंत कुम्भक[1] शांति के साथ करनेका उत्तम अभ्यास करै, इतनीशक्ति एकसाथ नहींआसकती किन्तु उसको क्रम२प्राप्त करना चाहिये। इसप्रकार रातदिन में मिलाकर ३२० प्राणायाम करने की जिस की शक्ति होजाती है, उसको रोगी होने का कुछ भय नहीं रहता है और वह तुरीयावस्था के आनन्द का अधिकारी होता है, यह बात पहिले एकबार कहचुके हैं। इसप्रकार प्राणायाम से रोगोंकी रोक और नाश कैसे होते हैं, यह बात साधारणरूप से कही ज्वर, वायुगोला, जलोदर आदि विशेष रोगोंको दूर करने के लिये प्राणायाम किसप्रकार करना चाहिये इसका विस्तार के साथ वर्णन योग के ग्रन्थोंमें कहाहै, उसको यहां कहने का अवसर नहीं है तथापि पहिले जोकुछ विचार किया है

---

१ कुम्भक के १ सूर्यभेदन २ उज्जायी ३ सीत्कारी ४ शीतली ५ भस्त्रिका ६ भ्रामरी ७ मूर्छा और ८ प्लावनी, यह आठप्रकारहैं उस में सूर्यभेदन कुम्भक से अस्सी प्रकार के वायुके दोष और कृमिरोग आदि का नाश होता है। उज्जायी से जलोदर, हृदय और कंठ में होनेवाले रोग तथा धातुविकार आदि दूर होते हैं ऐसे सूर्यभेदन आदि सब कुंभकों के लक्षण और उन से कौन २ रोग दूर होते हैं इस का सविस्तार वर्णन हठयोगप्रदीपिका आदि ग्रन्थों में कहा है।

उस से ही, सन्ध्या, प्राणायाम के द्वारा आयुको बढाने में कितनी उपयोगी है, इसका आपको निश्चय होहीगया होगा। अब संध्या प्राणायाम आदि क्रिया को नियम से करता हुआ जो अनन्यभाव से ईश्वर का पूजन करता है, उसकी रक्षा करने के लिये ईश्वर कैसे उद्यत होते हैं इसविषय में एक प्राचीन कथानक कहताहूँ-मेधावी नगर के राजाका एक चन्द्रहास नामक पुत्र था, उस के जन्म से ही छः अंगुलि थीं, राजाने ज्योतिषियों को बुलाकर उसकी जन्म-कुण्डली का फलबूझा, उन्हों ने कहा-अब १० वर्ष इसको अच्छे नहीं हैं, फिर अच्छेदिन आवेंगे। तदनन्तर थोडे ही दिनोंमें चन्द्रहास के मातापिता दोनों का परलोक होगया और शत्रुओंने राज्य को छीन लिया, तब इसबालक के प्राण बचाने के लिये शुभचिन्तक धाईने उसको कुन्तलपुर के राजा के धृष्टबुद्धिनामक मंत्री के पासलेजाकर चन्द्रहास की रक्षा करने को विनय करी, मंत्री ने इसबातको स्वीकार करके धाई और चन्द्रहासबालक दोनों को अपने पास रखलिया, दुर्भाग्यवश थोडेदिनों के अनन्तर उस धाई का भी मरण होगया, तब उसबालकके अत्यन्त अनाथदशा में होजाने पर पूर्वकर्म के अनुसार उस को नारदऋषि ने दर्शन देकर तथा स्नान, सन्ध्या, प्राणायाम आदि सिखाकर पूजाके लिये एकशालिग्राम की मूर्त्ति भीदी। यहबालक, नारदजी की आज्ञानुसार उस मूर्त्ति की नित्य पूजा करके मूर्त्ति को अपने मुख में रखलेता था और पूजाके समय फिर बाहर निकाललेताथा, ऐसे करते २ उसका बहुतसा पुण्य बढगया। बहुतों को यहाँ यह शंका होगी कि-नारदऋषि जैसे पहिले सर्वत्र आते थे, वैसे अब क्यों नहीं आते? इसका उत्तर यही है कि-अबलोगों की श्रद्धा भावना पहिलीसी नहीं रही। एकसमय नारदजी ने ही विष्णुभगवान् से विनयकरी कि-आप जगतकी रक्षा छुपेहुए रहकर क्यों करते हैं? मृत्युलोक

में जैसे राजे प्रत्यक्ष सिंहासनपर बैठकर राज्य करते हैं तैसेही आप भी मनुष्यका रूप धारण करके ठाटके साथ राज्य क्यों नहीं करते इसपर भगवान् ने कहा कि–इस का उत्तर मैं तुमको कुछदिनोंके बाद दूँगा, इससमय तुमसत्यलोकमें जाकर,तहाँ क्या होरहाहै,उसका समाचार लाओ,भगवान्‌की आज्ञासे नारदजी सत्यलोकमें गये, तहां एकचालीस सूँडका हाथी था,उसके चारोंओर लोकोंका बड़ाभारी समूह लगादेखा। कुछदिनमें समूहकमहोनेलगा और दूसरे दिन तो केवल२।४ ही मनुष्य उस हाथीके पास देखने में आये। यह वृत्तान्त नारदजीने वैकुण्ठ में आकर भगवान्‌को सुनाया, तब विष्णुभगवान्‌ने कहा कि नारद! मैं भी इसी प्रकार दृश्य होकर मृत्युलोक के राजाओं की समान ठाट के साथ, रहनेलगूं तो कुछ दिनों में 'अतिपरिचयादवज्ञा' अधिक परिचय होने के कारण अवज्ञा होकर मुझे कोई भी न माने। यह सुनकर नारदजी भी अपना काम इसनियम के अनुसार सँभलकर करनेलगे। आजकल तो कलियुग है! फिर अपना अपमान कराने के लिये नारदजी काहे को आने लगे हैं क्योंकि वह प्रत्यक्ष आकर खड़े होजायँ तब भी लोग उन की कीमत नहीं समझेंगे। अस्तु, इधर धृष्टबुद्धि की कन्या विवाह के योग्य होगई, इसकारण उस ने ज्योतिषियों को बुलाकर अपनी कन्या की जन्मपत्रिका दिखाई, और इसका विवाह किसके साथ होगा यह भी बूझा, तब ज्योतिषियों ने कहा कि आपके यहां जो अनाथ बालक पलरहा है उस के ही साथ इसका विवाह होने का योग दीखता है, तब तो राजा को बुरालगा और कुछ क्रोधभी आया तथा ज्योतिषियों के वचन को अपने बल से मिथ्या करने के लिये, सेवकों को बुलाकर 'चन्द्रहास को जङ्गल में लेजाकर मारडालो, यह आज्ञा दी, तब वह इसको घोर जङ्गल में लेजाकर वध करनेलगे, तब तो वह बालक दीनवाणी से कहनेलगा कि–

अरेभाई ! तुम मुझे मारडालोगे, यह तो ठीक ही है परन्तु पहिले मुझ को स्नान संध्या करलेने दो तब मारना, उन्होने पहिले तो इस बात पर ध्यान ही नहीं दिया, अन्त में उन में से एक बूढेने कहा कि–यह बालक जैसा कहरहा है, ऐसाही करलेने दो, हमें तो मारने से ही प्रयोजन है, एक घडी भर की और देर सही। इसप्रकार छुट्टी मिलते ही चन्द्रहास ने स्नान सन्ध्या आदि नित्य क्रिया से निवट-कर शालिग्राम की मूर्त्ति मुख में से बाहर निकाली और उसकी मा-नस पूजा करके अन्त में प्रार्थना करी कि–हे भगवन् ! अब तुम मेरी इस अन्त की पूजाको ग्रहण करो, तुम्हारे चरणों के सिवाय दूसरा कोई भी जगत् में मेरा रक्षक नहीं है, और शरणागत की रक्षा करना आपकी प्रतिज्ञाहै ऐसी प्रार्थनासुनकर प्रभुको करुणा आई और साक्षात् दर्शनदेकर कहाकि–बेटा! भय न कर, अबतुझको साक्षात काल का भी डर नहीं है, तब चन्द्रहास ने प्रभु के चरणों पर मस्तक रक्खा और प्रभु अन्तर्धान होगये । इतने ही में आकाशवाणी हुई कि–हे चन्द्रहास ! तुझको काल से भी भय नहीं है, जो कोई मारने के लिये तेरे ऊपर शस्त्र उठावेगा वह आप नष्ट होजायगा और उस शस्त्रके भी टुकडे २ होजायँगे, इस आकाशवाणी को सुनकर वह सब मारने वाले घबडा गये और मारने का काम एक दूसरे के ऊपर डालने लगा। अन्त में सबने मिलकर निश्चय किया कि–यह बालक विचारा साधु है और निरपराध है, सो इस को मारने से हमें क्या मिलेगा ? परन्तु महाराजको, इस के मारडालने का निश्चय कराना चाहिये, अतः इसकी इस छठी अंगुली को काटकर लेचलें और महाराजको दिखादें, बस महाराजको निश्चय होजायगा, यह बात चन्द्रहास ने भी स्वीकार करली, तबतो उन्होंने छठी अंगुली काट-राजा को दिखादी, जिससे राजा सन्तुष्ट होगया।

इधर चन्द्रहास वन में बड़े आनन्द के साथ समय बिताने लगा।

सुन्दर २ फल खाकर और उत्तम २ झरनोंका जल पीकर वह अखण्ड भगवद्भजन में निमग्न रहनेलगा, प्रभु की कृपा से गौ उस के पास आकर उस को दूध पिलातीथी, और मोर उसके ऊपर छाया करके सूर्य का ताप दूर करतेथे, इसप्रकार कुछ दिन बीतनेपर कुन्तलपुर के राजा के अधीन राजाओं में से एक राजा की सवारी उधर को निकली सो यह बालक उसकी दृष्टिपड़ा, वह राजा बूढ़ा और पुत्रहीनथा; इसकारण उसने विचारा इस बालक को पुत्र की समान पालन करके इसको ही राज्य देदूं, ऐसा विचारकर चन्द्रहास को अपनी राजधानी में लेगया और उत्तमता के साथ पालन पोषण करके अन्त में उस को ही राजा बनादिया । फिर कुछ दिनों में मुख्य राजाका अर्थात् कुंतलपुर देशके राजाका मंत्री धृष्टबुद्धि उस नगर में किसी कार्य के लिये आया, सो चन्द्रहास को देखकर बडे आश्चर्य में हुआ और मन में कहनेलगा कि—यही अभीतक कैसे जीता है ! और इस को राज्य कैसे मिलगया ! फिर मंत्री ने उस अधीन राजा को धमकाया कि—तुमने महाराजकी आज्ञा के विना इस बालक को राज्य कैसे देदिया, यह बाततो ठीक नहीं हुई अच्छा अब मैं अपने पुत्र मदन को इसके विषय में पत्र लिखकर, महाराज के पास भेजता हूँ, वहा महाराज इसको प्रत्यक्ष देखकर अधिकार मिलने की आज्ञा देंगे, यह बात सब ने मानली और पत्र लिखकर चन्द्रहास को कुन्तलपुर भेज दिया, धृष्टबुद्धि ने अपने पुत्र मदन को देने के लिये जो मुहरबन्दपत्र लिखाथा उस में यह समाचार था कि—इस पत्र के साथ भेजेहुए पुरुष को, बांचते ही विष खिलाने की युक्ति करना, उस पत्र के साथ शीघ्र ही चन्द्रहास कुंतलपुर में पहुँचा और नगर के बाहर एक बाग में उतरा, कुछ भोजन करके जल पीने के अनन्तर मार्ग में चलने के श्रम से उस को निद्रा आगई, उसीसमय धृष्टबुद्धि की पुत्री विषया

अपनी सखियों के साथ तहां विहार करने को आई, वह इसका सुंदररूप, देखकर अत्यंत मोहित होगई, इसके साथ जो पत्र था वह भी इसके देखने में आया, इसने पत्रको युक्ति से खोलकर भीतर लिखाहुआ समाचार पढलिया, जिसकी बात पढकर आश्चर्य में होगई और विचारने लगी कि ऐसे सुंदरपुरुषको विष देने के लिये मेरे पिता ने क्यों लिखा है ? और ऐसा करने के लिये ही इस को यहां क्यों भेजा है ? इस पत्रके लिखने में कुछ न कुछ चूक अवश्य हुई है, विष शब्दके स्थान में विषया लिखने को होंगे, परन्तु चूक से या अक्षर रहगया है। सो इस पत्र को मैं सुधारे देती हूँ ऐसा विचार अपने नेत्रों में से काजल निकालकर एक तिनुके से 'विष' शब्द के आगे 'या' अक्षर और बनादिया फिर पत्र को ज्यों का त्यों बन्द करके तहां से चलीगई, चन्द्रहास ने जगने पर वह पत्र मदन को देदिया, तब इसको पढकर मदन बडा आनन्दित हुआ कि-पिताजी ने मेरी बहिनके लिये योग्यही वर ढूंढकर यहां भेजा है, मैं भी अब विलम्ब न करके इन दोनों का विवाह करदूँ ऐसा विचारकर उस ने शीघ्रही उपाध्याय को बुलाकर बडे समारोह के साथ उन दोनों का विवाह करदिया। विवाह के अनन्तर शेष उत्सव होहीरहाथा कि-इतने ही में धृष्टबुद्धि कुन्तलपुर में आपहुँचा और यह सब समाचार सुनकर उसको बडा क्रोध आया और उसी ने अपने मन में विचारा कि-पुत्री विधवा होजाय तो कुछ हानि नहीं, परन्तु किसी युक्ति से इसका प्राणान्त अवश्य करना चाहिये। मन में ऐसा निश्चय करके उसने चन्द्रहास से सब के सामने कहा कि-तुम मेरे जमाई तो होगये परन्तु विवाह होजाने के अनन्तर हमारे कुल में चंडिका के चरणों में प्रणाम करने की चाल है, सो आप कल को पूजा की सामग्रीलेकर चंडिका के दर्शनों को जाइये और भक्तिके

साथ पूजा करिये। नहीं तो कुछ न कुछ अनिष्ट होजाने का संदेह है, इधर पुजारी को बुलाकर गुपचुप उस के कान में कहदिया कि कल प्रातःकाल के समय पूजा करने के लिये जो सब से पहिले आवे उसको तत्काल चंडिका के सामने बलिदेने का प्रबंधकरना, तुमको बहुतसी बखशीस मिलेगी, इसलिये इसकाम में चूकना नहीं, इसप्रकार सब बात पक्की होगई। इधर रातको चंडिकाने कुन्तलपुर के राजा स्वप्न में कहा कि—कल प्रातःकाल ही तू अपना राज्यधृष्टबुद्धि मंत्री के जामात को देदेना, नहीं तो कल को तेरा नाश होजायगा। राजा ने जागकर प्रकाश होने पहिले ही मन्त्री के घर उस के जामाता को बुलाने के लिये दूत को भेजदिया। वह पहिले तो मंत्री के पुत्र मदनको मिला, तब मदन ने राजाकी आज्ञाका समाचार जानकर चन्द्रहास से कहाकि—आपको राजमहल में अभी बुलाया है इस लिये आप शीघ्र ही तहाँ जाइये और पूजाकी सामग्री लेकर मैं देवी के मंदिर में जाता हूं, चन्द्रहास ने यह बात स्वीकार करली और दोनों ओर को चलेगये, यह बीच गड़बड़ धृष्ट बुद्धिको कुछ भी मालूम नहीं था, इधर राजाने अपनी गद्दी बडे गौरव के साथ चन्द्रहास को देदी और इधर मन्दिर में अन्धकार के कारण मंत्रीके पुत्र को न पहिचानकर पुजारीने देवी के आगे बलिदेदिया यह समाचार पाते ही मंत्री दौड़ता हुआ देवी के मंदिरमें आया और मदन को मराहुआ देखकर तत्काल अपना शिर मंदिरके खंभ से फोडकर प्राण देदिये। यह बात थोडे ही समय सारे नगर में फैलगई, इस से चन्द्रहास को बडा दुःख हुआ, वह इकल्हाही देवी के मंदिर में आया और प्रार्थना करने लगा कि—हे मातः! मेरा कोई दोष नहीं है तथापि इससमय साले और श्वसुरके मरण का कारण मैं ही हुआ हूं, ऐसी निन्दा चारों ओर फैलीहुई है, यह कलंक मेरे सिवाय और किसी से दूर नहीं होसकता, तथापि

ऐसा नहीं होगा तो फिर मुझ को जीवित रहकर ही क्या करना है ! मैं भी अपने प्राण दिये देता हूँ, ऐसा कहकर खड्ग से अपना शिर काटने को था इतनेही में देवी ने प्रत्यक्ष प्रकट होकर उसका पकड़लिया और उसकी विनय से तिनदोनों को जीवित करदिया, इसप्रकार अन्तकी घटनाहो कर सब आनन्द के साथ अपने २ स्थानको गये । यह सब बात चन्द्रहास के अनन्य भावसे शालिग्राम की पूजा करने का फल था । तात्पर्य यह है कि कोई सन्ध्या देव पूजन आदि कर्मों को नियम के साथ करताहै उसकी आधि व्याधि सहज मेंही नष्ट होजातीहैं और संकटके समय ईश्वर अवश्यंही उसकी सुध लेते हैं ।

ॐ शान्तिः शान्तिः शांतिः

व्याख्यान आठवां

विषय—प्रतिमापूजन.

यशैवा समुपासते शिव इति ब्रह्मेति वेदान्तिनो
बौद्धा बुद्ध इति प्रमाणपटवः कर्त्तेति नैयायिकाः ।
अर्हन्नित्यथ जैनशासनरता कर्मेति मीमांसका
सोऽयवो विदधातु वाञ्छितफलं त्रैलोक्यनाथो हरि ॥

आज विश्वासरूपी कदम्वके वृक्षके नीचे सनातनधर्मरूपी श्रीकृष्ण अपनी प्रेमरूपी मुरली बजारहे हैं । उसकी मधुर ध्वनि को सुनकर सभासद्रूपी गोपीजनभी अपने हाथमें विवेक का डफ लेकर और उपासना की बांसुरी बजाकर भक्तिरस में निमग्न होते हुए आनन्द से हरियशोगान करेंगे , यह आशा है एकवारकहो हरेराम हरेराम राम राम हरेहरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्णहरेहरे।, जिनको केवल आजकल अंग्रेजी विद्यालयों में एक अंगरेजी की ही शिक्षा मिली है ऐसे कुछलोगों की अपने धर्म के ऊपर से श्रद्धा कुछ २ शिथिल होचली है, नई विद्या के प्रभाव से प्रकट होनेवाले रेल तार

आदि बाहरी भौतिक चमत्कारों से उनके नेत्र चौंधाकर, उन को स्नान सन्ध्या प्रतिमापूजा आदि अपने धर्म की रीति में पोच और मूढ़ता के काम प्रतीत होनेलगे हैं। तरुणबालाकों के कोमल मनों के ऊपर ऐसे ढंग का संस्कार जमना उन के इसलोक के और परलोक के कल्याण का अत्यन्त बाधक है, इसकारण आज प्रतिमापूजन के विषय परही विचार करलेना उचित प्रतीत होता है। हम जिस की प्रतिमा बनाकर पूजाकरते हैं, वह ईश्वर वास्तव में कैसा है? वेद कहते हैं कि वह निर्गुण, निर्विकार और सर्वव्यापक है, उस को ही वेदान्तीब्रह्मकहते हैं। इस सृष्टि में के पदार्थों के मुख्य दो प्रकार हैं एक साकार और दूसरा निराकार। साकार वस्तुओं की गणना होना कठिन है। उस घट, पट मनुष्य, वृक्ष, पशु, पक्षी आदि अनेकें प्रकार हैं और सब के भिन्न २ आकार, गुण, व्यापार आदिदेखनेमें आते हैं, इसकारण उनका वर्णन आपही सब लोग उत्तमता से कर सकते हैं, परन्तु इन में से किसी जाति के भीतर ईश्वर की गिनती नहीं होसकती और ईश्वर में इन वस्तुओं की समान आकार गुण आदि भी कुछ नहीं है, इसकारण उस के स्वरूपका वर्णन आपलोग कुछ नहीं करसकते। अथवा रूप आदि गुणों से युक्त किसी एक व्यक्ति की समान ईश्वर की व्यक्ति अथवा पुतला हमारे देखने में नहीं आता है इसकारण वह साकार पदार्थों के वर्ग में नहीं गिनाजासकता अब निराकार वस्तुओं के विषय का विचार करते हैं, निराकार पदार्थों में मन, उस के काम क्रोध, लोभ आदि विकार, भूख, प्यास; वायु आदि पदार्थ हैं। यद्यपि इन पदार्थों का आकार प्रत्यक्ष देखने में नहीं आता तथापि इन की प्रतीति मन को होती है तथा इनका थोड़ा बहुत वर्णन कियाजासकता है और इन के कार्य भी प्रत्यक्ष हमारी दृष्टि में पड़ते हैं। उदाहरण के लिये देखो कि-हमारा 'मन' क्या वस्तु है? उसका आकार कितना बड़ा है? यह बात आप को दि·

खाई नही जासकती है, तथापि 'यह बात मेरे मन में आई नहीं' इत्यादि वाक्यों से आप को मन का होना स्वीकार करना पड़ेगा और जो सङ्कल्प विकल्प होतेरहते हैं तथा हम जो कुछ विचार या कल्पना करते हैं वही मन का रूप है। अपने विचार शब्दों के द्वारा दूसरों को स्पष्टरूपसे जतादिये जाते हैं और बुद्धिबलसे कुछ कविता कीजाय तो वह ग्रन्थरूप से औरों की दृष्टि के सामने लाईजासकती है। हाथ पैरों को कष्ट होकर नेत्रों की लाल २ होना, यह क्रोधका रूप है, इसको सूरत देखने से दूसरा सहज में ही समझलेता है। शक्ति क्या वस्तु है और उसका आकार कैसा है, यह बात हमको नहीं दीखती है परन्तु कोई पाँच बोझा उठावे तो उस की इतनी शक्ति को हम स्पष्टरूप से समझलेते हैं। वायु दीखता नहीं है परन्तु वृक्षों के पत्तों को हलताहुआ देखकर अथवा किसी नदी में बडी२ तरंगें आती हुई देखकर हम वायु के बेगका अनुमान करते हैं। खबर पहुँचानेवाले तार में की विजली हम को दीखती नहीं है, तथापि उस के कारण होनेवाले खटके हमारे सुनने में आते हैं। सार यह है कि बहुतसी वस्तुएं निराकार हैं तथापि उन के कार्य प्रत्यक्ष अनुभव में आते हैं और उनका थोड़ा बहुत वर्णन भी हम करसकते हैं, परन्तु ईश्वरके विषय में ऐसा नहीं होसकता, क्योंकि—श्रुति कहती है कि—'यतोवाचोनिवर्त्तन्ते अप्राप्य मनसासह' 'न तत्र चक्षुर्गच्छतिनवाग्गच्छति' अर्थात् मन, बुद्धि, वाणी और चक्षु आदि इन्द्रियों की गति ब्रह्ममें नहीं है, भगवद्गीता अध्याय ३ में लिखा है कि—इन्द्रियाणिपराण्याहुरिन्द्रियेभ्यः परंमनः। मनसस्तु पराबुद्धिर्योबुद्धेः परतस्तुसः। इस कारण ही ईश्वरको अलक्ष्य कहते हैं, आजतक जितने पदार्थ बुद्धि के बल से समझेगये हैं, उन सबसे पहिले वह ब्रह्मविद्या मानता था और आगे को ज्ञानकी परम उन्नति होकर जो पदार्थ जानेजायँगे

ईश्वर निःसन्देह उन 'सबसे भी परही रहेगा, उसका वर्णन नहीं होसकता, इसीप्रकार 'नेति नेति' कहकर ब्रह्मका वर्णन करने के विषय में श्रुतियों के रामीनामा देनेपर उन श्रुतियों के पीछे२ जानेवाले जो स्मृति, शास्त्र, पुराणआदि, उन विचारों को तो ब्रह्मका पता लगेहीगा कहां से ? किसी से ब्रह्मका वर्णन नहीं होसकता तो रहनेदो, परन्तु कोई ब्रह्म से प्रत्यक्ष भेट करानेवाला मिलजायगा तो हमारा काम बनजायगा, क्या कोई ऐसा है ? नहीं है। जैसे कोई मनुष्य डूबजाय तो वह अपने डूबने का अनुभव कहने को लौटकर नहीं आता है केवल तटपर खड़ेहुए मनुष्यही उस के डूबने का समाचार कहते हैं इसीप्रकार शुक सनकादि सैकडों ऋषि मुनि ब्रह्म की खोज करने को गये उन के तहांही निमग्न होजाने का समाचारमात्र शास्त्र कहते हैं परन्तु उसका प्रत्यक्ष अनुभव वहभी नहीं कहसकते और वह आपही ब्रह्म में लीन होगए तो प्रत्यक्ष भेट ब्रह्म से कौन करावेगा ? फारसी में कहा है–'दरिबिहर किश्ति फिरोशुद हजार। के पैदा न शुद् तख्तयेबर किनार।' अर्थात इस ब्रह्म समुद्र में आजतक हजारों नाव डूबगईं, परन्तु उनकी लकड़ी का एक टुकड़ा भी नहीं आया, सार यह है कि–समुद्र के जल से ही उत्पन्न हुई लवण की पुतली समुद्र की थाह लेने को जाय तो जैसे वह तहां ही घुलकर रहजाती है तैसेही जीव ब्रह्म से उत्पन्न हुए और ब्रह्मरूपहीहैं तथा ब्रह्म खोज में जानेपर तहां ही लीन होकर रहजाते हैं। स्वभाववादी कहेंगे कि–'जो कहीं दीखता नहीं, जिसका वर्णन नहीं होसकता, जो कर्त्तापन से रहित है ऐसे केवल कल्पना करेहुए ब्रह्म को लेकर हमें क्या करना है ? गेहुओं से उत्पन्न होते हैं, वामरे से वानर[1] हो-

(१) पिण्डीभूते यदन्तर्जलनिधिसलिले याति तत्सैन्धवाख्यं, भूयः प्रक्षिप्तमास्मिन्विलयमुपगतं नामरूपे जहाति । प्राज्ञस्तद्वत्परात्मन्यथ

ता है, गौ दूध देती है, उसको खावे पीयें आनन्द करें, अवसर आपडे तो–' ऋणंकृत्वा घृतं पिबेत् ' करज लेकर घी पियें । स्वर्ग का लालच और नरक का भय,यह सब वृथा बातेंहैं । हमको संसार में जो स्वभावसिद्ध बातें प्रत्यक्ष दीखती हैं वही ठीक हैं बाकी सब मिथ्या कल्पना है, ऐसा कथन कितनो ही को सत्य प्रतीत होगा परन्तु यह ठीक नहीं है, मनुष्य तात्कालिक सुखके लोभ में पड़-जाता है और वह प्रारम्भ में ठीकभी लगता है परन्तु परिणाम में वह विलक्षण दुःखदायक होता है। पुनर्जन्म के व्याख्यान में जीव कर्मपाश से कैसे बँधता है और उसको सुख दुःख होने के कारण क्या हैं, यह सब बात विस्तार के साथ कहचुके हैं । ब्रह्म वा ईश्वर स्वरूप काल्पित है, ऐसा स्वभाववादी कहते हैं, परन्तु ब्रह्म काल्पि-निक न होकर यह सब सृष्टि काल्पिनिकहै । सृष्टि का अधिष्ठान ब्रह्म है और उस की सत्यता से ही सृष्टि सत्यसी भासती है,उस में कर्त्तापन नहीं है परन्तु उसके कारण से ही संसार में 'केऽस्तन्जारो वार हमको दीखाहे हैं, यह जो कहा कि–वह कहीं नहीं दीखता सो वह सर्वत्र परिपूर्णरूप से भराहुआ है । फारसी में भी कहाहै कि–'अंदरूनो बरून् अज् पशोपेश, वर चरीरास्त जेरो बा-लाई । एके दरहेच् जामहरिजा, वुल अजब मादअम् के हर-जाई । ' अर्थात् हेईश्वर ! भीतर बाहर आगे पीछे, दायें, बायें, ऊपर, नीचे सर्वत्र तूही भरा है; देखाजाय तो तू कहीं भी नहीं है तथापि आश्चर्य यह है कि–तू सर्वत्र है । इस प्रकार जिसको वेदा-न्ती ब्रह्म कहते हैं, वह ईश्वर सर्वत्र व्याप्त है परन्तु बाहरी दृष्टि से देखनेवाले को वह कहीं दीखता, यदि मनुष्य विचारदृष्टि से देखनेलगे तो उसका अस्तित्व सहज में ही समझ में आजायगा ।

भमति लयं तस्य चेतोहिमांशौ वागशौ चक्षुर्के पयसि पुनरस्वमेतस्मै दिक्षु कर्णौ । (वेदान्तकेशरी)

उदाहरण के लिये कल्पना करो कि—इस शामियाने के ऊपर से (समास्थान के तम्बू के ऊपरसे कोई मनुष्य,लड्डू आदि खानेके पदार्थ अथवा और कोई भोगके पदार्थ हमारी ओर को फेंक रहा है, वह चाहे हमको प्रत्यक्ष नहीं दीखता है तथापि उसके विद्यमान होने की कल्पना हम सहज में ही करलेंगे, इसी न्यायसे ऐसे बडे ब्रह्मांड में के व्यापार, जो बड़े नियम के साथ उत्तमता से चलरहे हैं, उन का नियन्ता और व्यवस्थापक कोई तो होनाही चाहिये, यह बात स्पष्ट है। आस्तिक और नास्तिकों के वाद विवाद विषयक बडे बडे ग्रन्थ बने हैं और उन में अन्त को आस्तिक वादही ठीक ठहरा है आज दूसरे विषय पर व्याख्यान का आरम्भ हुआ है इसकारण इस विषय पर अधिक कहना मैं उचित नहीं समझता, परन्तु विषयकी संगति के लिये दिग्दर्शन मात्र किया है, अस्तु। पूर्वोक्त शामियाने के ऊपर के मनुष्य का आपको दर्शन करना होतो वह आपको बैठे ही नहीं होगा, उस के लिये आप को उठकर ऊपर को देखना पडेगा, ऐसा करने से भी नहीं दीखेगा तो इधर उधर सिढ्ढी लगाकर देखने का उद्योग करना पडेगा, जब साधारण शामियाने के ऊपर बैठेहुए मनुष्य से भेट करने के लिये ऐसा परिश्रम उठाना पडता है तो अनन्त कोटि ब्रह्मांडरूपी शामियाने के ऊपर जो अपनी सत्ता चलाता है, उस का दर्शन बिलकुल सहज में कैसे होजायगा ? वह इतना सस्ता नहीं है कि—नास्तिक वा सुधारक(आर्यसमाजिष्ट आदि) एकप्रकार से उसके नास्तित्व का ही प्रतिपादन कररहे हैं तो उन को निश्चय कराने के लिये वह स्वयं उन के आगे आकर खडा हो जाय या उसके भक्त बाजीगर की समान लकडी घुमाघुमाकर उस को छे आवें और उन नास्तिक आदिकोंके सामने खडा करदें। उस का दर्शन होने के लिये शरीर में तीव्र वैराग्य उत्पन्न होकर मनुष्य अन्तर्निष्ठ होना चाहिये ऐसा पहिले व्याख्यान में कहा ही है, अब

उतना अधिकार जितने शरीर में नही है उन को भी निराश नहीं होना चाहिये । जो राजा दयालु होता है वह अपनी प्रजा में से छोटे बड़े गरीब अमीर सब की प्रार्थना अपने पासतक पहुँचने का भिन्न प्रकार का प्रबन्ध कररखता है।तिसीप्रकार अनन्त ब्राह्मण के स्वामी परमदयालु तिस परमेश्वर ने विषयी, मुमुक्षु और मुक्त आदि सबप्रकारके लोकों को अपने पास पहुँचमाने के भिन्न २ मार्ग नियत कर रक्खे हैं । यदि वह ऐसा न करता तो जैसे चित्र अपने चित्रकारको नहीं मानते हैं या जैसे किसी रोये हुए वृक्षका पौधा अपने लगानेवाले को नहीं जानता है, हमारी भी यही दशा होती, परन्तु उसने हम सबों के लिये हरएक प्रकार की सुलभता कररक्खी है, जिस का परिचय आप लोगों को आगे के विचार से होगा । कोई परमेश्वर से उस के निराकार ऐश्वर्य के द्वारा जा मिलते है और कोई साकार ऐश्वर्य के द्वारा जा मिलते हैं, यह दो मार्ग अर्थात् उसके उन्नत पद पर, जाने के लिये चढ़ने को मानो दो सीढियें हैं । इन में से जिस को जो मार्ग सुगम पड उस को वही स्वीकार करना चाहिये । परन्तु [१]निराकार ऐश्वर्य का मार्ग बडा विकट है, उस में विषयी पुरुषों का निर्वाह नहीं होसकता । इस मार्ग का आश्रय करनेवालों को आत्मोपासक या ब्रह्मोपासक कहते हैं । आजकल निराकार देव के भक्तों का सुकाल (इफरात) है क्योंकि--निराकार भक्ति में कुछ खर्च तो होता ही नहीं, उस में देवता को स्नानकराने या नैवेद्य समर्पण करने की खट पट तो है ही नहीं, क्योंकि--उनका उपास्य देव ठहरा निर्लेप फिर स्नान कैसा ! और नित्यतृप्त को नैवेद्य की भी क्या आवश्यकता है ! तैसे ही फूलफल तुलसी धूपदीप आदि की भी आवश्यकता नहीं है फिर जिन को स्वभाव से ही स्नान सन्ध्या आदि कर्म बखेड़ा मालूम होतेहैं और जिनके मुख में थोड़ासा सुधारको

[१] क्लेशोऽधिकतरस्तेषामव्यक्तासक्तचेतसाम् । (श्रीमद्भगवद्गीता)

घठे भी मराहुआ है वह सूखी भक्ति अपने पास रखकर अपने को निराकारका भक्त क्यों नहीं कहेंगे ? परन्तु मित्रों ! निराकारदेवकी भक्ति अथवा आत्मोपासना यह सहजबात नहीं है, इसके सिद्ध होनेके लिये शरीर में तीव्रवैराग्य बहना चाहिये। जो आत्मोपासक होते हैं उन की बुद्धि शत्रु और मित्र में एकसमान होती है अर्थात् वह राग, द्वेष, मान, अपमान, सुख, दुःख आदि द्वन्द्वों से पर होजाते हैं, उनका किसी से वाद विवाद नहीं होता है और फर्याद करने के लिये दीवानी फौजदारी की कचहरी में जाने का भी उन को अवसर नहीं पड़ता, वह अन्तर्यामी निर्विकार आत्मा का परमेश्वर वा ब्रह्मसे अभेद मानते हैं और अन्त में तद्रूप होजाते हैं तथा सकलविश्व को भी तद्रूप देखते हैं। सनक, सनन्दन, शुक, वशिष्ठ, वामदेव, अर्जुन आदि ब्रह्मोपासकों में से, इन लोगों को "रिलिजियस" यूनिवर्सिटी में के एम्. ए. क्लास का जानना चाहिये, जैसे आजकल एम्. ए. क्लासवाले बहुत थोड़े होते हैं तैसे ही उनकी संख्या भी बहुत कम है। श्रीमद्भागवत में कहा है। कि–' मनुष्याणां सहस्रेषु कश्चिद्यतति सिद्धये यततामपि सिद्धानां कश्चिन्मां वेत्ति तत्त्वतः।' अर्थात् सहस्रों मनुष्यों में से एकादही सिद्धि के लिये उद्योग करता है और ऐसा उद्योग करनेवालों में से भी एकादही मुझ को तत्त्व से जानता है। सार यह है कि इस कक्षा के लोग बहुत थोड़े हैं, इन से अन्य कक्षा के लोगों ही की संख्या अधिक है, उनकी क्या व्यवस्था है, उस को हम देखते हैं। सब मनुष्य जैसे एक से आकार वा एक से स्वरूप के नहीं होते हैं तैसे ही सब की बुद्धि भी एकसी नहीं होती है। हरएक अपनी बुद्धि के अनुसार किसी विषय को ग्रहण करसकता है। लकड़ी आदि के आश्रय के विना जैसे अग्नि का स्वरूप समझना कठिन है तैसे ही साधारण बुद्धि के मनुष्य

को देहादिकों के आश्रय के बिना ईश्वर के स्वरूप को समझना कठिन है, इसकारण दयालु ईश्वर ने साकार ऐश्वर्य बनकर भिन्न२ बुद्धि के पुरुषों के लिये भिन्न २ प्रकार के रूप प्रकट करे और उनको मुक्ति का मार्ग खोलदिया। एम्० ए० क्लास के नीचे ही जिनका अधिकार है अर्थात् जो लोग बी० ए० तक की योग्यता के हैं, वह अपनी बुद्धि की पहुँच के अनुसार पुरुषसूक्त में वर्णन किये हुए ईश्वर के विराट्स्वरूपकी उपासना करतेहैं। वह सकल विश्व उस विराट पुरुष का शरीर है, वह 'सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात्' है, अर्थात् उस के सहस्रों चरण हैं और वह भूमि को सब ओर से व्याप्त करके दश अङ्गुल का होरहा है ऐसी उसकी भावना होती है यहां सहस्र शब्दका अर्थ'हजार' नहीं है, क्योंकि ऐसा अर्थ करनेपर, सहस्र मस्तक और सहस्र नेत्र होने से, हरएक मस्तक के बांटे एक २ नेत्र आकर परमेश्वर काणहो-जायगा! और एक २ चरण होने से लँगडा होजायगा, इसकारण यहां सहस्र शब्द का अर्थ 'अनन्त,समझना चाहिये, तैसेही दशा ङ्गुलमतिष्ठत् यहां दश शब्दका अर्थभी अनन्त समझना चाहिये दशाङ्गुलमतिष्ठत् इस वाक्य का अर्थ कोई नाभि से दशअंगुल के अनन्तरपर अर्थात् हृदय देश में रहा ऐसा करते हैं। कोई दश अंगुलियों से निर्देश करने में आने योग्य अर्थात् दशों दिशाओं में व्यापरहा है ऐसा अर्थ करते हैं। और कोई तीसरे दशअंगुल में अर्थात् दोनों हाथ जोड़ने में या भक्तों के केवल नमस्कार में ही प्रभु रहते हैं ऐसा अर्थ करते हैं परन्तु ठीक अर्थ यह है कि—सब विश्व में व्यापकर वह अनन्त उठाहुआ है, अर्थात् कितनी ऊँचाई तक है, यह नहीं कहाजासकता, अस्तु। इस विराट् पुरुष के उपासक ईश्वर की विराटरूप में उपासना करके उस की, आकाश रूप पात्र में सूर्यका दीपक बनाकर आरती करते हैं। अब तीसरे प्र-

कार के लोग अर्थात् म्याट्रिक क्लासवाले हैं, वह शास्त्र को थोडा बहुत समझते हैं और उन में श्रद्धा भी है, परन्तु एकसाथ विराट्स्वरूपका ध्यान करने की शक्ति नहीं है, अतः उन के लिये विराट्स्वरूप के भिन्न२ अंगों की उपासना कही है। परमेश्वर के भिन्न२ अंगों की उपासना कीजाय तो वह परमेश्वर को ही पहुँचती है। व्यवहार में ही देखलो किसी मनुष्य ने, दूसरे के नेत्रों में शोभा के लिये काजल डाला या उस के पैर में धारण करने को उत्तम जोडा दिया तो उससे उस के केवल नेत्रही या पैरही सन्तुष्ट हुए ऐसा लोग नहीं समझते हैं, किन्तु तिस व्यवहार से उस मनुष्य को ही आनन्द होना मानते हैं अथवा कोई सेवक अपने स्वामी की सेवा करने में एकसाथ सब शरीर नहीं मलाभासकता इसकारण पहिले उस के पैर, फिर हाथ, फिर गर्दन, इसप्रकार मलता है और इसप्रकार भिन्न २ अंगों को मलने से वह सब उस स्वामी की ही सेवा होती है। तिसी प्रकार विराट्स्वरूपके भिन्न २ अंग वा अवयवों की यदि उपासना की जाय तो भी वह सब निःसन्देह परमेश्वर की ही होती है। इसकारण ही वेदों ने 'सूर्यश्च मा मन्युश्च० इत्यादि' मंत्रोंसे विराट पुरुष के नेत्र अर्थात् सूर्य की और 'अग्निमीले० इत्यादि' मंत्रों से अग्नि की उपासना कही है। कोई नई रोशनीवाले—अग्निहोत्र, यज्ञ याग आदि का मुख्य लाभ वायु की शुद्धि है, ऐसा कहते हैं, परन्तु उन कर्मों का यदि इतना ही फल होतो बहुत से वर्षो तक अग्निहोत्रका विषय पालन करने की कोई आवश्यकता नहीं है और अग्नि में मुट्ठी भर भरकर तिल तथा पली भर२ कर घी डालने की भी कोई आवश्यकता नहीं है, तिलों का एक थैला और घोका कुप्पा म्युनिसिपैलिटी के किसी नौकर को सौंप देना चाहिये, बस गली२में हवा की शुद्धि का काम उत्तमता से होजायगा। परंतु मित्रों! अग्निहोत्र आदिका मुख्य प्रयोजन वायु की शुद्धि नहीं है, वह तो आनुषङ्गिक लाभ हम

को स्वयं सिद्ध सहज में ही मिलता है, इसीप्रकार कितने ही नई रोशनीवाले आचमनका लाभ कफदूर होकर कंठकी शुद्धि बताते हैं परन्तु यदि ऐसा होताती कफके नाशके लिये इस सुखेउपायको छोडकर कोई भी अन्य औषधि आदिकी खटपट नहींकरता और वार २ डाक्टर वैद्य आदि को बुलाने का कष्ट भी नहीं भोगना पड़ता । अग्नि की समान जलकी पूजा कहीहै,यह सब नदियों और तीर्थ उस विराट पुरुष के शरीर की नाड़ियेंहैं, हमारे शास्त्रों में तीर्थों का माहात्म्य कितना कहा है, सो प्रसिद्धही है । वृक्ष के नीचे मट्टी की महामाया नामक सद्य देवता बनाकर पूजते हैं, यही पृथ्वी की पूजा है । यह सात महामाया—अतल, वितल, सुतल, आदि सात पातालों की सूचक हैं । सन्ध्यामें भी—पृथ्विरत्वया धृता लोकादेविरवंविष्णुना धृता इत्यादि मंत्रों से पृथ्वी की प्रार्थना की जाती है । हमको उत्पन्न करनेवाली माता, घरमें लायेहुए अन्न को पकाकर जब नानाप्रकार के पदार्थ हमारे सामने परोसती है तब हमको वड़ा आनन्द होता है और हम उसका वड़ा गोरव करते हैं, फिर सहस्रों मन अन्न और नानाप्रकार के पदार्थ अपने उदर में से निकालकर जो हमको देती है, क्या उसकी पूजा न करें? अवश्यही करनी चाहिये इसप्रकार विराट पुरुष के पंचभूमय विश्वरूप शरीर के भिन्न २ अंगोंकी पूजा कहीहैं,परन्तु परमेश्वर के ऐसे व्यापकरूपकी कल्पना एकदम भिन की बुद्धि में नहीं आसकती ऐसे पुरुषों का उद्धार करनेके दयालु परमेश्वर ने मत्स्य कच्छप आदि अनेकों प्राणियों के साकार रूप धारण किये । और इतने से ही तृप्त नहोकर, कदाचित् ऐसे *विजातीयरूपों में मनुष्यों का प्रेम ठीक २ नहीं जमेगा, ऐसा विचारकर* परमात्मा ने मनुष्यका देह धारा और रामकृष्ण आदिरूपों से अवतीर्ण होकर हमको सन्मार्ग दिखाया, यह परमात्मा का हमारेऊपर वडाभारी उपकार है । अवतार का कार्य समाप्त होनेपर

वह सब विभूतियें अपने धामको चलीगई, तब उन का प्रभाव चिर कालतक चित्तपर रहने के लिये उनकी पाषाणादिमय अथवाधातुमय मूर्त्तियें बनाकर उन के द्वारा उनकी उपासना करने का मार्ग शास्त्रकारों ने हमको बतादिया है। उस मूर्त्ति में चित्त एकाग्र होने के लिये त्राटक[1] आदि प्रयोग भी कहे हैं और त्राटकादि की रीति से मूर्त्ति में ध्यानयोग होते २ अन्त में रामकृष्ण आदि ईश्वरकी विभूतियों का फोटो (चित्र) हमारे अन्त करण पर बराबर पड़कर 'भृंगकीटकन्याय' से अपने सच्चे परमात्मस्वरूप में जाकर मिलजाने की योजना की है। अच्छे फोटो लेनेके लिये क्यामरा आदि साधन उत्तम होना चाहिये, इसकारण हमारा भक्तिरूप क्यामरा जैसा होगा तैसाही परमात्मा की मूर्त्ति का फोटो हमारे अन्त करणरूप शीशे के ऊपर पड़ेगा। चित्तकी वृत्ति के सामने जो कोई पदार्थ आता है वह उसी के आकार की बनजाती है यह सिद्धान्त हम पीछे कहचुके हैं, उस को ध्यान में लानेपर ऊपर कही हुई सब बात समझ में आजायगी, इस सिद्धान्त का विचार करते हुए मैंने यह भी कहाथा कि–अन्त करणकी वृत्ति किसी भी विषय में जब अत्यन्त स्थिर होती है तब वह सर्वथा उसीके आकारकी बनजाती है, अर्थात् वृत्ति के स्थिर होनेके लिये सन्मुखका पदार्थ भी जितना स्थिर होगा उतना अच्छा है, यह बात स्पष्ट है और हम फोटोग्राफी में भी यह नियम देखते हैं कि–जिस का फोटो लियाजाता है वह पदार्थ फोकस में (केंद्र अर्थात् मध्यबिन्दु में) आकर कुछ देर स्थिर रहना पड़ता है। इस से शास्त्रकारों की बताईहुई पाषाणादिमय मूर्त्तियें वृत्ति को तन्मय करने में कितनी उपयोगी हैं, इस की

---

१ अन्तःकरणको स्वस्थ और दृष्टि को निश्चल रखकर किसी सूक्ष्मपदार्थ की ओर को, नेत्रों में जल आनेतक एकसमान देखतेरहने को त्राटक कहते हैं। (हठयोगप्रदीपिका)

कल्पना आप लोग सहज में ही करसकते हैं।प्रतिमापूजन ईश्वर प्राप्ति का श्रीनामा अथवा पहिला सूत्र कटकोडा है, उसको सीखने के लिये शास्त्रकारों ने, जैसी प्रतिमा उपासना के योग्य कही है, उस को ही ठीक मानकर हमें सरल रीति से उपासना करना चाहिये। उस में अपनी तर्क वितर्क चलाने की हमको आवश्यकता नहीं है। छोटेलडके को गुरु, अ आ आदि अक्षर सिखाने लगैं उससमय यदि वह कह कि—मैं तो इस को 'अ' नहीं कहता, या 'अ' मुझ को अच्छा नहीं लगता, तो यह उसका कहना लाभदायक होकर हानि कारक होगा, तिसी प्रकार शास्त्रकारों के माने हुए विष्णु शिव आदि कीजो शालिग्राम आदि प्रतिमा हैं, उन को हम नहीं मानते या हम को अच्छी नहीं लगती ऐसा कहने वालों का विचार भी ठीक नहीं है, पुस्तक को पढना सीखने की जिसकी इच्छा हो, उसको जैसे गुरु के बतायेहुए अक्षरों को मानना चाहिये तिसी प्रकार परमेश्वर की प्राप्ति की इच्छा करनेवाले हमको भी शास्त्रकारों की बताई हुई प्रतिमा माननी चाहिये, नये सीखने वाले को आरम्भ में शास्त्र के मर्म को नहीं समझसकता, इसकारण कुछ समयतक गुरु की बताई हुई बातको ग्रहण करने योग्य मानकरही, उसको काम करना चाहिये। देखलो यूक्लिड (रेखागणित) सीखने वालेको गुरु अपने मुखसे 'A point is that which has position but no magnitude अर्थात् जिस की स्थितिमात्र होती है परन्तु परिमाण नहीं होता है वह विन्दु कहाता है, तिस विन्दुकी व्याख्या कहते हैं और बोर्ड (तख्ते) पर एक बडासा विन्दुबनाकर दिखाते हैं और फिर A line is length without breadth जिस में केवल लम्बाई हो मोटाई न हो उस को रेखा कहते हैं, उस रेखा की व्याख्या कहकर, खडिया की एक लम्बी रेखा खेंचकर दिखाते हैं, उससमय विद्यार्थी यदि गुरु से बूझे कि—मास्टरसाहब! आप तो कहते हैं कि -विन्दु

का कुछ परिमाण नहीं होता है और आपका बोर्डपर काढा हुआ बिंदु तो अच्छा एक दरडकी समान दीखता है, यह क्या वात है? तथा आपने कहा था कि–रेखा में मोटाई नहीं होती है परन्तु आपकी बोर्डपर काढी हुई रेखा तो रस्सेकी समान मोटी है? यद्यपि विद्यार्थी का ऐसा प्रश्न करना अमसे नहीं है, परन्तु गुरु उससमय चाहे कितनाही माथा फोडकर इन प्रश्नों के उत्तरदेने का उद्योग करे तथापि उसका समाधान नहीं होगा, और उसशास्त्र में उसको अच्छा ज्ञानहुए विना बिन्दु रेखा आदि का ठीक२स्वरूपभी वह नहीं समझेगा, इसकारण जबतक उसशास्त्र को समझने न लगे तबतक उस को गुरुकी बताई हुई बातें ही विश्वासपूर्वक मानलेनी चाहियें। इसीप्रकार हमारे पुरातन आचार्यों ने 'प्रतिमापूजन' आदिके विषय में जो वातें कही हैं पहिले हमको वही विश्वासके साथ मानलेनी चाहियें। योगवासिष्ठ में कहा है कि–"अव्युत्पन्नमना यावद्भवानज्ञाततत्पदः। गुरुशास्त्रप्रमाणैस्तु निर्णीतंतावदाचर॥"इसकारण ब्रह्मविद्या सीखने का आरम्भ करनेवाले विद्यार्थियों के लिये मैं कहता हूँ कि–In Religious ceometry let it be granted that shaligram is a gievn point and shivalinga a perpendicular line अर्थात् धर्मविषय भूमिति में 'शालिग्राम' ही बिंदु है और 'शिव, लिङ्ग लम्बी रेखा है, ऐसा मानकर आगे को चलिये। यह शास्त्रद ष्टि से विचाराहुआ अब प्रतिमापूजा का रहस्य क्या है? इस का दिग्दर्शन कराने के लिये एकव्यवहारिक दृष्टान्त कहता हूँ मानलो कि–कहीं लाटसाहब की सवारी आनेवाली है और तहाँ स्वागतके लिये बहुतसे राजों का एकबडा दरवार होगा, उसदरबार में किसी प्रकार की चूक नहोजाय, इसलिये सब राजे मिलकर पहिले दिन नकली दरबार करें, उस में सब राजे अपने स्थानपर विराजमान और लाटसाहब की जगह केवल एककुरसी डालदें और उस कुर-

साके पास जा २ कर हरएक राजा दस्तकथाल करै और फिर लौटर कर अपनी जगहपर ही आविराजे, इसप्रकार सबतरह का सनमान यदि कुरभी को मिले तो वहाबह सन्मान लाटसाहब के लिये नहीं है! इसी प्रकारहम धार्मिक लाटसमान किसी देवताकी प्रतिमा बनाकर उसको जो गंध, फूल, फल, धूप, दीप, नैवेद्य आदि सामग्री समर्पण करते हैं, वह केवल उस धातुकी प्रतिमा के लिये नहीं है किन्तु अपने इष्टदेवता केहीलिये है, कहीं मूर्तिको अनेकों प्रकार के शृंगार और भोजन समर्पण कियेजाते हैं और प्रतिमा के सामने नृत्यगान आदि भी कियाजाता है, कोई २ कहते हैं कि–यह रीति बहुत बुरी है, परन्तु उसमें नृत्यगान आदि विषय मुख्य नहीं हैं, किन्तु उसके द्वारा विषयासक्त पुरुषों को भक्तिमार्ग में लेजाने का उद्देश होता है, जानकर देवदर्शन को जानेवाले बहुत ही थोड़े हैं, परन्तु तहाँ छ-ख्तनौके बढ़िया कत्थक का गाना होरहा है, इस बातको सुनतेही सहस्रों पुरुष पहुँचजाते हैं और जब वह मनोहर राग गानेलगता है उसमें अत्यन्त मग्नहोजाते हैं, परन्तु तहाँ यदि सुदैव से श्री-कृष्णजी की मूर्त्ति दृष्टि पड़गई तो खोटीवृत्ति दूर होकर चित्त पर मेश्वर की ओर को पहुँचता है, इतना भी न हुआ तो कुछ समय को श्रीहरिका नाम स्मरण, भजन, कीर्त्तन तो होता है यह लाभ भी थोड़ा नहीं है । सिंगिया स्वयंविष है, ठीक है! परन्तु और औष-धियों के साथ मिलाकर उसका वैद्यक में कहीहुई रीति से सेवन कियाजायतो वह अमृत रूप होकर बड़े २ रोगोंको दूर करने में समर्थ होता है, तैसेही गान नाच आदि विषय यद्यपि विषरूप हैं तथापि हरिकीर्त्तनरूपी अमूल्य औषधि से मिलकर युक्ति के साथ उसका सेवन कियाजाय तो उससे संसाररोग की शान्ति होने में बड़ीसहायता मिलती है, जो प्रेमके साथ ईश्वरका चिन्तवन करता है वह तो निःसन्देह मुक्त होहीजाता है, परन्तु काम, क्रोध, लोभ

और साक्षात् द्वेष इनमें से किसी भी वृत्ति से जो कोई ईश्वर का चिन्तवन करता है वही सद्गतिपाता है, इस विषय में अनेकों उदाहरण दियेजासकते हैं तथा प्रतिमापूजन की सिद्धि के लिये ऊपर जो प्रमाण दिखाये हैं उनके सिवाय और भी बहुत से प्रमाण हैं, परन्तु अवकाश न होने के कारण, केवल पाषाण आदि की मूर्त्तिमें दृढभावना होने से परमेश्वर की प्राप्ति कैसे होती है, इस विषय में एक छोटासा दृष्टान्त कहकर आजके व्याख्यान को समाप्त करूँगा। काश्मीर देशमें एक वसुमती नाम सुशीला स्त्री थी, और उसके एक गोविन्द नामक बेटा था, उसकी ५।६ वर्ष की अवस्था होनेपर एक दिन पड़ोस में मुरलीधर भगवान् के मंदिर में कथा सुनने को गई, तहाँ उसको प्रसादमिला और वह उसने घर आकर अपने पुत्र गोविन्दको देदिया, उसने बूझा कि-मातः ! यह कहाँ से लाई ? वह कहनेलगी कि भगवान् मुरलीधर के मन्दिर में से, तबतो उस लड़के ने फिर बूझा कि-मुरलीधर कौन हैं ? और कैसे हैं ? तथा वहें मुझकोभी मिलजायँगे क्या ?, माताने कहा वह प्रत्यक्ष परमेश्वर हैं, उनका बडाभारी ऐश्वर्य और पराक्रम है, तथापि वह परमदयालु हैं इसकारण जो कोई उनको प्रेमके साथ पुकारता है उसको अवश्यही मिलते हैं तू उद्योग करेगातो वह तुझकोभी अवश्य मिलेंगे, तबसे वह बालक सांझसवेरे आरती समय मुरलीधर भगवान् के मंदिर में जानेलगा, आरती के समय भगवान् की सुन्दर मूर्त्तिको देखकर वह बड़ा प्रसन्नहोता था और मुखसे 'मुरलीधरआओमुझसेमिलो' ऐसा कहकर उनके पकडने को आगेको हाथ बढाता था, ऐसे एक वर्ष बीतगया,परन्तु प्रभुमुरलीधर से न भेटही हुई,न बातचीत ही हुई तबतो उसने माता से कहा कि—भगवान् अभीतक मुझे ,क्यों नहीं मिले ? तब माताने कहा कि—बेटा ! भगवान् ऐसे एकायकी नहींमिलतेहैं और कुछदिनों ऐसाही उद्योग करेगातो मिलेंगे।गोविन्दका सच्चाप्रेम प्रभुमें

जटित होगया और प्रतिदिन पुण्यसञ्चय बढने लगा, यहाँ अपने भूखप्यास को भी भूलगया, और भगवान् मुरलीधर से मिलने की ऐसी धुन लगी कि—एक दिन वह भगवान् से मिलने को अत्यन्त उत्कंठित होकर कुछ समयतक तो मूर्त्ति के सामने मौन खड़ारहा और अन्त में प्रार्थना करके कहने लगा कि—मैं इतने दिनो से भेट करने के लिये तुम्हारी सेवा कर रहा हूँ परन्तु तुम मिलते नहीं, अब आज यदि तुम नहीं मिलोगे, तो मैं यहाँ ही अपने प्राण देदूँगा, तबतो मुरलीधर ने उस बालक की ऐसी भक्ति देखकर मन में दयालुता ला उस को दर्शन दिया, और सुकुमार आठवर्ष के बालक का सुन्दररूप धारकर गोविन्द के कण्ठ में गलबैयाँ डाली, तब तो उस के आनन्द का पारावार नहीं रहा, फिर उस के कौतुक को पूरा करने के लिये मुरलीधर भगवान् मंदिर से बाहर निकल आये और उस के साथ एक ऐसा खेल खेलने लगे कि—जिसके जितने दांव होजायँ वह हाथ पर उतनी ही लकड़ी मारे, खेलते २ भगवान् के ऊपर गोविन्द के पाँच दाँव चढगये, गोविन्द ने कहा अब हाथ फैलाओ, हाथ आगे करते ही गोविन्द ने तीन संटी जमाईं और शेष दो रही थीं कि भगवान् हाथ छुटाकर भागने लगे, तबतो गोविन्द ने कहा कि-अरे छबार! मार से बचने को भागाजाता है, मेरे दाँव बिना चुकाये क्या मैं तुझ को जानेदूँगा? एसा कहता हुआ हाथ में संटी लिये मुरलीधर भगवान् के पाछे दौड़ा, भगवान् दौड़ते हुए अपने मंदिर में आकर पत्थर की मूर्त्ति में अन्तर्धान होगये और गोविन्द मंदिर के द्वारतक पीछे लगाहुआ गया परन्तु तहां पुजारियोंने उनको भीतर जाने से रोकदिया और जब वह प्रेम मे भरकर ढिठाई से आगे बढने लगा तब उन में से एक पुजारी ने क्रोध में भरकर गोविन्द के मुखपर थप्पड़ मारा, तब तो इस को मूर्छा आगई, फिर, सावधान होकर तहाँ से लौटा और मन में—'अच्छा! आज धोखा देदिया तो क्या है? कल को कहाँ

जायगा ? कलको मैं पहिले अपना दाँव लेलूंगा तब छोडूँगा " ऐसा कहता हुआ अपने घर को चला आया, इधर उस मूर्ति के गाल छिन्न भिन्न हुए ऐसे दीखने लगे, उन में से रुधिर बहने लगा और मूर्ति भी रोतीहुईसी दीखी, तबतो पुजारी घबड़ाये, क्योंकि-हमारे शास्त्र में ऐसा होना कुलक्षण कहा है। प्रतिमा हँसने लगें, रोनेलगें, काँपनेलगें या उन में से रुधिर निकलने लगे तो दुनिया में कोई बड़ा भारी उत्पात होने की सूचना समझना चाहिये। कुछ दिन हुए नेपाल में भगवान् पशुपति की मूर्ति में से अचानक रुधिर टपकने लगा था और उस से बहुत से लोगोंको सन्देह हुआ कि-कोई बड़ा भारी अनर्थ होने वाला है तदनुसार भारतवर्ष में प्लेग आदि होकर लाखों मनुष्य काल के गाल में चले गये, अस्तु। प्रतिमा की यह दशा देखकर पुजारी बड़ी चिन्ता में पड़े, उसी रात में मुरलीधर ने उस को स्वप्न दिया कि-तुमने गोविन्द का बड़ा अपराध करा है, अतःमैं वेद्य भोग आदि मुझे, अर्पण न करके उसी को समर्पण करो तब मैं प्रसन्न होऊँगा, पुजारी उठते ही दूसरे दिन नैवेद्य आदि सब लेकर गोविन्द के घर पहुँचे और वह उस को अर्पण करे तब तो गोविन्द कहने लगा कि-मैं समझगया, मुरलीधर बड़ा चालबाज है, मार से छूटने के लिये मुझे यह लालच देता है !! सार यह है कि-भावना के अनुसार सिद्धि होती है, भगवान् ने गीता में कहा है कि ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्। जो प्रतिमा में ईश्वर की दृढ भावना रखकर उपासना करता है, उस को परमेश्वर की प्राप्ति कैसे होती है, यह इस दृष्टान्त से आप भलीप्रकार समझसकते हैं।

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः।

व्याख्यान नवम ।

विषय-श्राद्ध ।

ब्रह्मानन्द परमसुखद,केवल ज्ञानमूर्ति द्वन्द्वातीत गगनसदृशं तत्त्वमस्यादि लक्ष्यम्।
एकं नित्य विमलमचल सर्वधीसाक्षिभूत,भावातीत त्रिगुणरहित सद्गुरु त नमामि॥

आज सनातनधर्मरूपी प्रयागक्षेत्र में हरिनामरूपी गंगा, सभासदों के हृदयपर कमल धोडालती है, यमुना लोकों को यमराज के पंजे से छुड़ारही है, और ब्रह्मज्ञानरूपिणी सरस्वती सभासदों के अन्तःकरण में गुप्तरूप से निवास कररही है, ऐसे इस त्रिवेणी के संगमरूप पवित्र तीर्थ में स्नान करके आशा है आप मुख से श्रीहरिके यश का गान करेंगे। आजकल इंग्लेण्ड अमेरिका आदि देशों में सांसारिक उन्नति जैसी शिखरपर जाकर पहुँची है,तैसे ही पहिले भारतखण्ड में आध्यात्मिक उन्नति शिखरपर जापहुँची थी, उससमय अनेकों बड़े २ ऋषियों ने अपने तप और योग के बल से दैवीशक्ति पाकर अध्यात्मविद्या के द्वारा जो अलौकिक खोज की थी, उन में तत्त्वों के अनुसारही हमारी श्राद्धकी रीति चली आरही है। आज उसी के विषय में कुछ कहने का विचार है। जैसे नदी के तटकी रेतीकी बड़ाभारी भूमि में एक रेते का कण होता है, तिसीप्रकार अपार विश्व में यह भूलोक है, भूलोककी समान ही सूर्यलोक, इन्द्रलोक आदि अनन्तलोक ईश्वर ने रचे हैं। आपको आकाश में जो असंख्यों तारागण दीखते हैं, उतने ही भिन्न २ लोक अथवा ब्रह्माण्ड हैं, इतना ही नहीं किन्तु हमारे देखने में न आनेवाले भी असंख्यों लोक हैं, जैसे भूलोकपर बस्ती और वनस्पति आदि हैं तिसीप्रकार और लोकों में भी बस्ती तथा अनेकोंप्रकार के अनन्तों पदार्थ हैं, जैसे पृथ्वी गोलाकार है तैसे ही यह भी गोलाकार हैं आकाश में तारागण यद्यपि एकसमान पृष्ठभागपर दीखते हैं तथापि वास्तव में वह ऐसे नहीं हैं, उन में ऊँचानीचापन बहुत है, परन्तु प्रत्येक

लोक की रचना ऐसी कुछ खूबीदार है कि–हरएक को शेषलोक हम से ऊपर हैं, ऐसाही प्रतीत होता है। जैसे आप ध्रुवलोक इन्द्रलोक आदि की ओरको अंगुलि दिखाते हैं तैसे ही वहांके लोक आपके भूलोककी ओरको अंगुलि उठाते होंगे, अधिक तो क्या, परन्तु जैसे आप जहां जावें तहां आकाश, आप के शिरके ऊपर ऊँचा और चारोंओर कटा है (कड़ाओ) की समान फैलाहुआ आप को दीखता है, जैसे आप के चरण भूमिपर टिकेहुए हैं वैसे ही उन के भी हैं हमारे ऊपर जैसे पृथ्वी का आकर्षण चलता है तैसे ही उन के ऊपरभी चलता है। यह सबलोक अथवा गोल परस्पर की आकर्षणशक्ति से जकड़ेहुए हैं। जैसे भूलोकको प्रकाश सूर्य से मिलता है तैसे ही और सब लोकों को भी प्रकाश सूर्य से ही मिलता है। और सबलोकों की अपेक्षा चन्द्रलोक भूलोक के बहुत समीप तथा चन्द्रलोकके ऊपरके भाग में पितृलोक है, जैसा कि–सिद्धान्त शिरोमणि में कहा है कि–' विधूर्ध्वभागे पितरोवसन्ति '। विशेष करके देवता, यक्ष, गन्धर्व आदिकों के लोक उत्तरध्रुव के ओर हैं और पितृलोक दक्षिण ध्रुवकी ओर है, जैसे सूर्य, चन्द्रमा, इन्द्र आदि लोकों से प्रकाश, अमृतवृष्टि और जलकीवर्षा आदि की व्यवस्था होती है तैसेही पितृलोक से मृतजीवों के सम्बन्ध की हरएक व्यवस्था होतीरहती है। जैसे कचहरियों में बड़ेछोटे ओहदेदार होते हैं, तैसेही पितृलोक की कचहरी में वसु, रुद्र, आदित्य, अर्यमा, अग्निष्वात्त आदि कार्यकर्त्ता हैं और वह श्रद्धाके द्वारा स्वयंतृप्त होते हैं तथा श्राद्धकरनेवाले से प्राप्तहुए अन्न आदि पदार्थ, मृतजीवों को, जहाँ वह हों तहाँ पहुँचाकर, उसके करेहुए श्राद्धके अनुसार अधोगति से मुक्त करने का उद्योग करते हैं और श्राद्ध करनेवाले कोभी आयु, प्रजा, धन, विद्या आदि देकर सुखीकरते हैं। वसु, रुद्र, आदित्य यह तो श्राद्धके देवताही कहाते हैं, उन सब पितरों में

देवताओं की समानही शक्ति है। कोई कहते हैं कि—प्राणी मरगया सोगया, मरगया फिर क्या है ? श्रद्धाके साथ करनेयोग्य कार्यको श्राद्धकहते हैं और वह तो जीवित पिता आदि काही करनाचाहिये, इस आक्षेप के ऊपर विचार करने की आवश्यकता नहीं दीखती, क्योंकि—श्राद्धमें जो तिल कुशा आदि पदार्थ कहे हैं वह जीवित मनुष्यों के मुखमें झोंकने के लिये नहीं हैं, इस बातको एक छोटासा बालक भी समझसकता है और मरजानेपर कुछ नहीं रहता, ऐसा कहने मेंभी कुछसार नहीं है, यह बात आप पुनर्जन्म के व्याख्यान सेही निश्चय करसकते हैं। तथा 'जो श्रद्धासे कियाजाय वही श्राद्ध है' इतनाही यदि श्राद्ध शब्दका अर्थ होगा तो विवाह आदि अनेकों कार्योंको लोग श्रद्धाके साथ करते हैं वह सब श्राद्धही कहानेलगें, परन्तु ऐसा कोई नहीं कहता। इसकारण श्राद्धमें श्रद्धाका होना ठीक ही है परन्तु श्रद्धाके सिवाय और भी बहुतसी महत्व की बातें होने से श्राद्ध नामक कर्मकी साङ्गता होती है। मरीचि ऋषिका वाक्य है कि 'प्रेतं पितॄंश्च निर्दिश्य भोज्यं यत्प्रियमात्मनः। श्रद्धया दीयते यत्र तच्छ्राद्धं परिकीर्तितम् ॥' जिसमें मृत-पुरुष विश्वेदेवारूप पितरों का उद्देश्य अपना प्रिय अन्न श्रद्धाके साथ दियाजाता है वह श्राद्धकर्म है। आज केव्याख्यान का पुनर्जन्म से निकट सम्बन्ध है, पुनर्जन्म के व्याख्यान में, मरण के समय जीवके साथ क्या२ पदार्थ जाते हैं और मरण के अनन्तर क्या गति होती है, इसका वर्णन विस्तार के साथ किया था, उस को ध्यान में लाने से आगे का विषय ठीक ठीक समझ में आ-

(१) वसुरुद्रादितिसुताः पितरः श्राद्धदेवताः प्रीणयन्ति मनुष्याणां पितॄन् श्राद्धेन तर्पिताः आयुः प्रजां धनं विद्यां स्वर्गं मोक्षं सुखानि च। प्रयच्छन्ति तथा राज्यं प्रेतान्नृणां पितामहाः ॥
(याज्ञवल्क्यस्मृति.)

आयगा। मरण के अनन्तर जीवकी गति तीनप्रकारकी होती है। १-उत्तम, २ मध्यम और ३ अधम, जो जीव कर्मबन्धनसे मुक्त होते हैं, उनका पुनर्जन्म नहीं होता है, यह उत्तम गति है। बहुत से पुण्यकर्म करने से स्वर्गादि लोक की प्राप्ति होती है और पुण्य समाप्त होनेपर उसलोक से लौटकर फिर मृत्युलोक में आनापडता है, यह मध्यमगति है। अधिकपापकर्म करने से जो जीव असख्य चौरासी के फेर में फिरते रहते हैं उन की यह अधमगति है। इन तीनों प्रकार के जीवों को श्राद्ध हितकारक है और तिन में भी अधमश्रेणीके जीवों को तो उसकी बडीही आवश्यकताहै तथा श्राद्ध करने वालेको भी श्राद्धसे आयु,धन,धन आदि की प्राप्तिहोतीहै, इस बातकी सिद्धि आगेकी विवेचनासे होतीहै। इससंसारमें और सब ऋणों की अपेक्षा मातापिता का ऋण पुत्र के ऊपर बडाभारी है। क्योंकि–उन्होंने पुत्रके ऊपर असंख्यों उपकार किये हैं। माता पुत्र को नौमासतक पेट में रखकर असह्य पीडाओं को सहती है और जन्म होने के अनन्तर माता पिता दोनों बालक की रक्षा और पोषण करने में रात दिन घोर कष्टतक सहते हैं, इस उपकार का बदला माता पिता को, किसी प्रकारभी नहीं दिया जासकता। ऐसी दशा में भी कितने ही कृतघ्नी लोग कहते हैं कि–माता पिता का उपकार ही क्या है? पिताकी अपने सुख की प्रबल इच्छा ही हमारी उत्पत्ति का कारण है और माताने हम को पेटमें रक्खा यह भी कोई बडी गौरव की बात नहीं है,हम और भाडे घरोंमें क्या नहीं रहते हैं? यह भी एक भाडेका घरही है। अधिक हुआ तो थोडा बहुत भाडा अर्थात् प्रतिमास पाँच रुपये के हिसाब से, नौ पंजे–पैंतालीस, रुपये उस के ऊपर फेंकदिये बस निवटगये।अब इस विषय में और अधिक विचार करना निरर्थक है, क्योंकि ऐसी बातों को सुनकर सहृदय मातृपितृ भक्त पुरुष कानों में अंगुली देने लगेंगे। एक कविने कहा

है कि-यं मातापितरौ क्लेशं सहेते सम्भवे नृणाम् ॥ न तस्य निष्कृतिः शक्या कर्तुं वर्षशतैरपि ॥ अर्थात् बालक के जन्मसमय में और जन्म होने के अनन्तर जो क्लेश माता पिता को सहना पडता है उसका पलटा सैंकडों वर्ष में भी नहीं होसकता। सार यह है कि--माता पिता का ऋण बडाभारी है, एक के हाथ से वह नहीं चुकाया जासकता। इसकारण अगली दो तीन पीडी की सहायता लेकर उस को चुकाने का यत्न करना पुत्रका अवश्य कर्त्तव्य आजकल के व्यावहारिक नियम में भी बेटा पिता के ऋण का देनदार है और वह न देसके तो उस के भी पुत्र से लिया जाता है, इस बात को सब ही जानते हैं। प्रस्तुत विषय में माता पिता का ऋण, यदि वह अधोगति में हों तो उस से उनका उद्धार करके सद्गति में पहुंचाने की युक्तिकरना है और उस सद्गति के लिये बुद्धिमान पुत्र को उन का श्राद्ध आदि करना चाहिये।श्राद्ध के लिये ब्राह्मणअच्छे विद्वान्, मन्त्रवेत्ता और आचारवान् होने चाहियें। आने दोआने में बिकने वाले अनपढ बा आचार भ्रष्ट ठीक नहीं होते हैं। जैसे यज्ञ में का 'स्फ्य' नामक पात्र खैर का होता है तैसे ही श्राद्ध में के पिन्डों का चरुकूटनेके लिये ऊखल और मूसल खैर का या दूसरा विहित वृक्ष का होना चाहिये। मेस्मेरिज़म् (प्राणविमय विद्या) का प्रयोग करने वाला मनुष्य, अपने अधीन मनुष्य के विषै विशेष प्रकार से हाथों का व्यापार आदि से दैवी शक्ति को जागृत करके उस से आश्चर्यकारक बातें कहलादेता है, यह कुतूहल आपने देखा ही होगा? तैसाही प्लॅंचेट नामक यंत्र भी परदेश से आयेहुए अनेकों पुरुषों के देखनेमें आये होंगे। उसके ऊपर प्रश्न करनेवाले ने हाथ रक्खा कि--उस में की विशेष शक्ति जागृत होकर उस को इच्छित प्रश्नों का लिखाहुआ जवाब मिलजाता है, आजकल इस यन्त्र में असली नकली की बडी गडबडी होगई है, इसकारण से यदि इच्छित बात

का उत्तर न मिला तो यह और बात है,परन्तु उस मंत्रमें वह शक्ति आने के लिये विशेष प्रकारका काल लगाना पड़ता है । व्यवहारमें भी आपको किन्हीं पदार्थों में बिजली आदि की शक्तियों को शीघ्र धारण करने की सामर्थ्य औरोंकी अपेक्षा अधिक देखने में आती है । तैसे ही खैर आदि काष्ठों में भी पितरों का आवाहन करने के अनुकूल-शक्ति होती है वह खैर आदि के बने ऊखल में चरु कुटने से पिण्ड में प्राप्त होकर विद्वान ब्राह्मणों के उच्चारण करे-हुए मंत्रों से जागृत होती है और पितृदेवता तत्काल तहां आ-कर उपस्थित होते हैं । जैसे तार के द्वारा समाचार एकही क्षण में दूर पहुँचादिया जाता है और वहां से अपना पुरुष रेल की सहायता से तत्काल आजाता है, तैसे ही ब्राह्मणों ने-'उशन्त-स्त्वा निधीमह्युशन्तः समिधीमहि। उशन्नुशत आ वह पितॄन् हविषे अत्तवे ॥ आयन्तु नः पितरः सोम्यासोऽग्निष्वात्ताः पथिभिर्देव-यानैः । अस्मिन् यज्ञे स्वधया मदन्त्वधिब्रुवन्तु तेऽवन्त्वस्मान्।' इसप्रकार आवाहन आदि के मंत्र उच्चारण करे कि-उसी समय मंत्रों से पितरों को क्षणभर में समाचार मिलकर, उनके शरीर में दिव्यशक्ति होनेकेकारण वह तत्काल श्राद्ध के स्थानपर आपहुँचते हैं अर्थात् श्राद्ध यह पितरों को 'Telegraphic ohmmunication (तारकी की खबर) है । श्राद्ध करनेवालेको,मेरे माता पिताकी क्या गति हुई है अर्थात् उन का जन्म किस योनि में हुआ है इत्यादि बातें जानने का कोई मार्ग नहीं है, इस विषय का सब वृत्तान्त पितृलोक के अर्यमा आदि अधिकारियों को विदित रहता है और पितृलोक की कचहरी में जो काम होताहै उस में विश्वेदेवताओं की भी बहुत कुछ सहायता रहती है इसकारण श्राद्ध करनेवालों को उन सबों के द्वारा अपने पित्रादिकों को सद्गति मिलने की युक्ति करनी पड़ती है, वह उन सबों को बुलाता है और पहिले देवताओं की

पड़ती है वह उन सबों को बुझाता है और पहिले देवताओं की पूजा करता है, पितरों की पूजा के पदार्थ तिल, कुशा, तुलसी आदि विशेष प्रकार के होते हैं। पवित्रक्षेत्र और पवित्र तीर्थ यह स्थान श्राद्ध के लिये परम श्रेष्ठ माने हैं। इतना ही नहीं किन्तु उनका दर्शन होते ही अधिकारी को श्राद्ध करने के लिये शास्त्र की आज्ञा है। देवताओं की पूजा सव्य से (वाम कंधेपर यज्ञोपवीत रखकर) और पितरों की अपसव्य (दहिने कंधेपर यज्ञोपवीत रखकर) करनी चाहिये। पितृकर्म में दक्षिणदिशा का सम्बन्ध अधिक होता है, क्योंकि–पितरों का निवासस्थान दक्षिण की ओर है यह बात पहिले ही कहचुके हैं। आश्विनमास का कृष्ण पक्ष (कन्यागत सूर्य) पितृकर्म में श्रेष्ठकाल माना है, क्योंकि– उस समय सूर्य दक्षिणायन होता है और उसकी किरणें पृथ्वीपर लम्बी रेखा से पड़तीहैं और पृथ्वीपरके पदार्थ ऊपर दक्षिण दिशा की ओर को सूर्य की किरणों के द्वारा जोर से खेंचेजाते हैं। जैसे ब्याटरी श्रेष्ठ होतो तार का काम जोर के साथ चलता है तैसे ही सूर्यकी किरणों की सहायता से पितृलोक के अधिकारी अपने कार्य को उत्तमता से करसकते हैं। पूर्व कथन के अनुसार पूजा होनेपर 'इदं पितृभ्यो नमो अस्त्वद्य ये पूर्वासो य उपरास ईयुः। ये पार्थिवे रजस्या निषत्ता ये वा नूनं सुवृजनासु विक्षु ॥' इत्यादि मंत्र पढकर अन्त में श्राद्ध करनेवाला प्रार्थना करता है कि–'आप सब मेरी इस पूजाको स्वीकार करके, समर्पण करेहुए अन्नादि के द्वारा तृप्त होकर मेरे पित्रादिकों को मुक्ति दो' वह इसप्रकार मानकर स्वयं तृप्त होतेहुए उस के पित्रादिकों को भी तृप्त करतेहैं और उस के श्राद्धके पुण्य से उनको अधोगतिसे मुक्त करके श्राद्धकर्ता को भी सन्तान, सम्पदा, आरोग्य आदि मिलने के विषय में श्रेष्ठ आशीर्वाद देते हैं और अपने स्थान को चलेजाते हैं,

यह श्राद्धका तात्पर्य कहा, अधिक जानना होतो शुक्लय
अध्याय १९ में के श्राद्ध प्रकरण की ऋचाओं को दे
तहाँ विस्तार के साथ मिलेगा । 'Welcome' 'Good morn
इत्यादि जो कल्पनाएँ आपको आजकल के समय में अत्यन्
रिचित होगई हैं, ऐसीही कल्पनाएँ पितृपूजा के विषय में अ
देखने में आवेंगी । कितने ही सुधारक (आर्यसमाजिष्ट आदि)
कहते हैं कि-श्राद्ध ब्राह्मणों का बनायाहुआ ढँग है, न पितर
हैं और न वह कुछ खाते हैं, यदि वह खाते तो श्राद्धके पदार्थ
तो कममें आते ऐसा तो कभी होता नहीं केवल ब्राह्मण ही श
के बहाने से अकेर पकान उड़ाजाते हैं और पिंड कुशा अ
पदार्थ नदी में फेंकदेते हैं । ब्राह्मणों का पेट 'लेटरबक्स (चिट्
डालने का सन्दूक या बंबा) थोड़ेही है कि-उसमें अन्नमरा वे
तत्काल पितरों को जाकर पहुँचजाय ! निःसन्देह यह बड़ा
'आक्षेप है परन्तु आजकल के समय में कोई गमार आदमी, कि
जोगरेजी पढ़े मनुष्य से ऐसा प्रश्न करे कि-महाशय ! मुरादाबाद
तारघर में जो खटखट् का शब्द सुनने में आता है वही क्षणभर
भीतर कलकत्ते में कैसे सुनाई देजायँगे ? तो उस प्रश्नको सुनने
वह तत्काल उस मनुष्य को मूर्खों में समझेगा । बस ऐसी ही उपर
बात है, यह श्राद्ध, टेलिग्राफिक् कॉम्युनिकेशन है, यह बात पहि
कहहीचुके हैं । माताका खायाहुआ अन्न जैसे गर्भमें के बालक अ
पहुँचताहै तैसे ही विद्वान् ब्राह्मणों का खायाहुआ अन्न, उनमें मंत्रशक्ति
से प्रविष्टहुए पितरों को पहुँचता है । सृष्टि में परमेश्वरने भिन्न
प्रकार के पदार्थों में भिन्न २ प्रकार की ही शक्तिरक्खी है । देख
हाथी कपित्थ (कैथ) के फलको खाकर और उसमें के केवल गूदेको
ही खेंचकर उसके गोलरसाबुत बक्कल को तैसाही मलद्वार से निकाल

(शहद) को निकाल २ दिव्य बनादेती हैं, अमेरिका सुधार के शिखर पर पहुँचगई है परन्तु वहाँ के लोगोंने मौहाल की मक्खी से तुलन पानेवाला कोई यंत्र बनाया है क्या ? हंसके सामने दूध और पानी मिलाकर रखनेपर वह उसमें से केवल दूधमात्र को ग्रहण करलेता है, तैसेही देवता और पितरों में दिव्यशक्ति है उसही शक्ति से पदार्थों में का सार खिचजाता है और पदार्थ जैसेके तैसे ही रहते हैं, तैसेही मंत्रशक्ति का प्रभाव भी बड़ा विलक्षण है, केवल अंगरेजी पात्र की एकदेशी शिक्षापाने वालों की समझमें एकायकी कैसे आवे ? दूसरे कितने ही पुरुष वेदोक्त गर्भाधान, यज्ञोपवीत आदि संस्कारों को मानते हैं केवल श्राद्ध संस्कार तैसा नहीं मानते परन्तु इसपर मैं यह कहता हूँ कि–गर्भाशय के ऊपर हाथरखकर केवल मंत्र शक्ति से गर्भ का संस्कार होता है और यज्ञोपवीत के समय मंत्र शक्ति के द्वारा बालक में कोई संस्कार होकर द्विजत्व प्राप्त होताहै यदि वह इसबात को मानते हैं तो इसीप्रकार श्राद्धके समयभी मंत्र शक्ति से मृतव्यक्ति का अभिलषित संस्कार होता है, ऐसा मानने में क्या बाधा है, अब मृतव्यक्ति को श्राद्धके द्वारा सद्गति कैसे मिलतीहै इस विषयमें विचारकरता हूँ, पुत्रका रुधिर, मांस, हड्डी, आदिसे बनाहुआ सकल शरीर माता पिता से उत्पन्न हुआ है, अर्थात् यह उन का फोटो या प्रतिबिम्ब है और पौत्र, पुत्र का फोटो है, ऐसा कहा जासकता है । एक फोटो से दूसरा, दूसरे से तीसरा, इसप्रकार अनेकों फोटो तयार होजाते हैं । ऐसी फोटो की परम्परा मन में लाते ही, यह परम्परा सात प्रवर्त्तक ऋषियों पर्यन्त जा पहुँचती है । किसी भी एक फोटो से लियेहुए, एक दो तीन पर्यन्त फोटो अच्छे स्पष्ट उठते हैं और आगे को लियेहुए फोटो स्पष्ट और सुबुद्ध नहीं उठते हैं, यह परीक्षा की हुई बात है, इसप्रकार मृत पुरुष अपने पीछे अपना अधिकार संसार में चलाने के लिये पुत्र' पौत्र, प्रपौत्र इनतीन अ-

धिकारियों को छोड जाना है, यह मानो उस के एजेंट हैं, उस के पापकर्मों का परिमार्जन करके अथवा उस के कार्यों मे की कमी को दूर करके तथा उस के पुण्य को समारकर उस को अधोगति से छुटाने की युक्ति उन ऐजेंटो को करनी होती है, क्योंकि–मृत पुरुष अपने को आपही नहीं छुटासकता, वह स्वर्गादि लोकों में अपने कर्मोंका फल भोगने समय, उस कर्म भोग की समाप्ति होने पर्यन्त नये कर्म करने के लिय मृत्यु लोक में आने का उस को अवसर नहीं मिलता है, वह बहुत से पुण्य कर्म करने के कारण स्वर्ग आदि फल को प्राप्त होतो तहाँ से उस को मुक्त करने के लिये एजण्टों को बहुतसा परिश्रम नहीं करना पडेगा। परन्तु बहुतसा पाप करने के कारण यदि वह अत्यन्त, अधोगति में पहुँच जायगा तो ही अधिक परिश्रम पडेगा, यह बात स्पष्टही है, तथापि निराश होने का कोई कारण नहीं है, यदि पुत्रादि उस के उद्धार का उद्योग करेंगे तो उस गति से भी मुक्त करसकेंगे। कल्पना करो कि–कोई मनुष्य, ऊपर से एक बडाभारी पत्थर दोनों हाथों से नीचे को लुडका रहा है, और नीचे तीन पुरुष मिलकर उसी पत्थर को ऊपर को लुडका रहे हैं तो इसका परिणाम क्या होगा? अर्थात् वह पत्थर निःसन्देह ऊपर कोही चढेगा। इसी प्रकार पिताने ५–१० वर्ष पर्यन्त एक समान पापकर्म किया था, तथापि पुत्रादिक प्रत्येक कम में कम से कम पचास २ वर्षपर्यन्त उस के उद्धार के लिये उद्योग करेंतो १५० वर्ष के प्रयत्न से क्या उसका उद्धार नहीं होगा? अवश्य होगा। मनुजी ने श्राद्ध पाँच प्रकार का कहा है, बृहस्पति भी का वचन है कि–"नित्यं नैमित्तिकं काम्यं वृद्धि श्राद्धं तथैव च पार्वणं चेति मनुना श्राद्धं पंचविधं स्मृतम्।" अर्थात् श्राद्ध ५ प्रकार का है नित्य, नैमित्तिक, काम्य, वृद्धि और पार्वण। इन में से "कुर्यादहरहः श्राद्धमन्नाद्येनोदकेन वा। पयोमूलफलैर्वापि

पितृभ्यः प्रीतिमाहरत् ॥ यदन्नं पुरुषोऽश्नाति तदन्नास्तित्पितृ-देवताः । अपक्वेनापि पक्वेन तृप्तिं कुर्यात्सुतः पितुः ॥ एकमा-प्याशयेद्विप्रं गृही नित्यं समाहिताः ॥ " अन्नादि से या जल से अथवा जल मूल फल आदि से ही पितरों को प्रतिदिन प्रसन्न करे; जिस अन्नको मनुष्य खाता है उस ही को पक्के वा कच्चे अन्नसे पुत्र पिता की और श्राद्धदेवताओं की तृप्ति करे, गृहस्थी नित्य सावधानी के साथ एकही ब्राह्मण को भोजन करादेय, "नित्यश्राद्ध भी न होसके तो ब्रह्मयज्ञ में केवल तर्पण करने से भी पित्रादिकों को सद्गति में बहुत कुछ सहायता मिलेगी। मृतपुरुष स्वर्ग में हो या पंचाग्नि के द्वारा पृथ्वीपर आगया हो तो-" स्वधा पितृभ्यो दिविषद्भ्यः " " स्वधा पितृभ्यः पृथ्वीषद्भ्यः " इत्यादि मंत्रों से उस को तिस तिस स्थानपर अन्न जल पहुँचकर तृप्ति और सद्गति प्राप्त हो, यह योजना श्राद्ध में भी है। । कोई कहै कि-यदि वह घोड़े के जन्म में गया हो तो पुत्र के करेहुए श्राद्ध से उस को क्या लाभ ? हां ! इसका भी लाभ है, इसप्रकार है कि वह घोड़ा किसी राजा या सरदार के यहां सुखसे रहेगा, १०-१० मनुष्य उसकी सेवा करने को उद्यत रहेंगे, शरीरपर सहस्रों रुपयों के आभूषण पहिराये जायँगे, खाने को उत्तमोत्तम माळमसाळो मिलकर परिश्रम भी बहुतही थोड़ा अर्थात् एकाध दिन ही उसके ऊपर खास सवारी होगी, ऐसे ऐश आराम में उसका समय व्यतीत होकर, पुत्रके श्राद्ध आदि पुण्य से उस को अगला जन्म भी श्रेष्ठही मिलकर उत्तरोत्तर सद्गति प्राप्त होती चलीजायगी, परन्तु यदि पुत्रादि श्राद्ध नहीं करेंगे तो उसही घोड़े को अपने पापानुसार किसी भाड़ा करनेवाले इक्के में जुतर कर परम कष्ट भोगने पड़ेंगे, सांझ सबेरे, रात दिवस असीम परिश्रम पड़कर भी पेट भरकर खाने को नहीं मिलेगा और पीठपर कोड़ा तथा पिछली टांगोंपर सड़ासड़ चाबुकों की मार पड़कर परंच

दुर्दशा सहनी पडेगी। अच्छा! मृत व्यक्ति कुत्ते की योनि में जायगा और उसके पुत्रादि श्राद्ध करेंगे तो वह कुत्ता भी किसी अमीरके यहां मखमलकी गद्दीपर बैठेगा और यदि श्राद्ध न कियाजायगा तो उस के शरीर में कीडा पडकर खाने तक को भी नहीं मिलेगा और दुत्कारें तथा ठोकरें खाताहुआ मार्ग में पडारहेगा। मनुष्य योनि में जन्म पाया होगा तो वह श्राद्ध की पुण्याई के धन,धान्य सन्तान, सम्पत्ति आदि से युक्त होगा और उसका श्राद्ध न होगा तो दरिद्रता और विपत्तियों में समयको बितातारहेगा, इसमें भी कई शंका करें कि-मनुष्ययोनि में आकर संन्यासी होजानेपर फिर तो कोई पंचायत ही नहीं? हां! वहांभी पञ्चायत है,दु:ख होता होगा तो हरएक, दशा में होगा, उस दशा में भी तुंबा फटजाना,कमण्डलु या कौपीन लकडी आदि की चोरी होजाना, भिक्षा के लिये किसी का भी न बुलाना इत्यादि अडचन हैं ही, सार यह है कि मृतव्यक्ति को सुखी करने के लिये श्राद्ध करना आवश्यक है। इसपरभी कोई आक्षेप करे कि जिनको स्वर्ग मिलगया है, वह तो वहां सुख में हैं ही, फिर उन के लिये श्राद्ध करने की क्या आवश्यकता है? हां! उन के लिये भी श्राद्ध की आवश्यकता है, श्राद्ध के द्वारा उन को स्वर्ग से भी ऊँचा स्थान अर्थात् अक्षयसुख की साधन मुक्ति प्राप्त होती है और इसके सिवाय पुत्रके इस सदाचरण से वह प्रसन्न होकर पुत्रको आशीर्वाद देते हैं। आपने म्यॅजिक ल्यॅण्ट्रनका खेल देखा होगा, स्वर्ग के देवता और पितर देखनेवाले हैं, आकाशही एक बडा लंबा चौडा पर्दा है, उस परदेपर मृष्टि के म्यॅजिक ल्यॅाण्टर्न में से पुत्र पौत्रादि के चित्र दिखाते हैं, वह यदि शुभाचरणों से युक्त दीखेंगे तो पित्रादिकों को आनन्द होगा और यदि वह मित्र चोरी, खून आदि दुष्कर्मों को करतेहुए दीखेंगे तो अन्य स्वर्गवासी दर्शकों के देखतेहुए, पित्रादिकों को लज्जासे अपनी गर्दन नीची

ही करनी पडेगी ।। इसकारण हे प्यारे मित्रगणों ! ऐसा काम न करो कि–जिस से तुम्हारे पूर्वपुरुषों की गर्दन नीची हो, अस्तु । अच्छा माना कि–स्वर्गवासियों को तो मुक्ति मिलती है परन्तु जो पहिले से ही मुक्तहोगये हैं, उन के निमित्त श्राद्ध आदि करनेमे कौन काम है? परन्तु उनके निमित्त किया हुआ श्राद्ध भी वृथा नहीं जाता है, किसी सद्गृहस्थ को यदि उस के निर्वाह की अपेक्षा अधिक धन मिलजाय तो वह उसको न फेंककर उस से किसी दूसरे का उपकार करता है, अथवा कोई बनवाया हुआ हौज यदि जलमे लबालब भरकर बाहरको बहनेलग तो उससे उसके चारोंओर के गढे भरजाते हैं,जैसे ही मुक्तपुरुषको श्राद्धके फलकी अपेक्षा न होनेपर भी , उस के वंश में के जो कोई और पुरुष अधोगति में क्लेश पाते होंगे उनका उद्धार होने में वह पुण्य उपकारक होगा इसप्रकार किसीकेभी उद्देश्य से कियाहुआ श्राद्ध कदापि निष्फल नहीं जाता, इतना ही नहीं किन्तु उस से बहुत से जीवों को अधोगति से मुक्त होने का मार्ग मिलता है । अब एक के कियेहुए श्राद्ध से दूसरा जीव, दुनिया में उच्चगति पाकर कैसे सुखी होता है और अन्त में वह कैसे मुक्त होजाता है, इस विषय में एक इतिहासरूप दृष्टान्त कहकर आज का व्याख्यान समाप्त करूंगा। श्रीमान् स्वामी रामानन्द के शिष्यों में एक ब्रह्मचारी था और उस को, भगवान् के नैवेद्य के लिये सीधा सामग्री लाने का काम सौंपा गयाथा, उस को गुरुकी यह आज्ञा थी कि–भगवान् के नैवेद्य के लिये जो सामग्री लाईजाय वह अपवित्र पुरुष से न लीजाय, वह निरन्तर ऐसी आज्ञा के अनुसार ही कार्य करतारहा, एक समय वर्षाकाल में नदी में बहुत अहला आकर जल ग्राम के बाजार में घुस आया, और बनियों की दुकानें बंद होगईं तब तो सीधा सामान कहींभी न मिला बाजार के उरलीओर एक चमार का घरथा उस

के समीप, वह जल अब उतर जायगा, घड़ीभर में उतर जायगा ऐसीवाट देखता २ वह ब्रह्मचारी बहुत देरतक खड़ारहा, परन्तु जल न उतरा तब तो अब 'क्या करना चाहिये' इस विचार में पड़ा, उस घरका स्वामी चमार तहां के राजा के यहां पहरेदारी के कामपर नौकर था और बड़ा सुखी था परन्तु इसके बालबच्चा कोई नहीं था उसने यह रामानन्द का शिष्य है, ऐसा पहिचान कर और उसकी उस समयकी दिक्कत को देखकर विचार किया। कि-मैं यदि आज इसको भगवान् के नैवेद्य की सामग्री देदूँ तो, इसपुण्यसे मेरेपुत्र होजायगा,इसकारण उसने ब्रह्मचारीसे आग्रह किया कि-महाराज! आज सीधा सामग्री आप मेरे घर से लेजाइए, पहिले तो ब्रह्मचारी ने अनसुनी सी करदी परन्तु जब उसने अत्यन्त आग्रह किया तथा उस समय और कुछ प्रबन्ध नहीं होसकता था, अतः अन्त में उसी के यहाँ से सीधा सामग्री लेकर वह मठ में आया,गुरु ने उस सामग्री को देखकर योगदृष्टि से जानलिया कि-यह चमार के यहाँ की है, तब तो उन्होंने तत्काल उसी शिष्य को पुकार कर कहा कि-ओ चमार! तू यह कहाँ से लाया है? तब उस ने हाथ जोड़-कर गुरु से सत्य२ समाचार कहदिया और अपने अपराध को क्षमा कराने के लिये प्रार्थना करी। गुरुजी ने हृदय में दया लाकर कहा कि-इसकर्म से तुझको चमार का जन्म मिले बिना तो रहेगा नहीं, परन्तु तेरे निमित्त सत्कर्म करके मैं शीघ्र तुझको उस योनिसे छुटा-दूँगा। फिर कुछ समय के अनन्तर उस शिष्य का मरण होकर उस ही चमार के घर जन्म हुआ, और पूर्व जन्म का तपस्वी होने के कारण उसको पूर्वजन्म का स्मरण रहा और वह माता का दूध नहीं पीता था, यह बात स्वामी रामानन्द जी के कानों तक पहुँची तब उन्होंने वहाँ जाकर उस के निमित्त कहा कि-अरे! तू नौ महीने माता के पेट में रहकर उस के खाये हुए अन्न से ही बड़ा है,

फिर अब उसी माता का स्तन पीने में क्यों सङ्कोच करता है ? कर्मानुसार जो भोग प्राप्त हो उसको भोगनाही चाहिये। इस के विना निर्वाह नहीं होसकता, ऐसा उपदेश करके, स्वयं उसके उद्धार के निमित्त उसके उद्देश से श्राद्ध आदि कर्म करना प्रारम्भ करदिया, इधर गुरुके उपदेश को सुनकर वह स्तन पीनेलगा, पिता ने इस का नाम 'रोहितदास' रक्खा, फिर भक्तमाल में प्रसिद्ध जो रैदासचमार हुआ वह यहीहै। इसने बालकपन में पत्थरके ठाकुरजी बनाकर उनको मट्टी के नैवेद्य अर्पण करना इत्यादि खेल करना प्रारम्भ किये, बालक दो प्रकार के होते हैं। एकतो दैवी सम्पत्ति के वह रोहितदास की समान सत्कार्यों की क्रीडा करते हैं और दूसरे आसुरी सम्पत्ति के, वह बकारा बनाना काटना, घरबनाकर उसको जलादेना इत्यादि खेल खेलते हैं, अस्तु। यह रोहितदास बडे होने पर घरका कोई कामकाज नहीं करते थे, रातुदिन अपना समय भगवान् के भजन में ही बिताने लगे, क्योंकि—उन्होंने प्रातजन्मपर्यन्त ब्रह्मचर्य का पालन किया था, तपस्या उत्तम करी थी, इसकारण पूर्वजन्म की सब बातों का उनको स्मरण था, परन्तु पिता की दृष्टि में, ऐसे वृथाकार्य में समय बिताने के कारण वह पिता को उनके ऊपर अधिक प्रेम नहींथा, फिर एकदिन पिताने अपने एवज में पहरादेने के लिये राजमहल में भेजदिया, सो यह तहाँ जाकर घडी२पर कहनेलगा। कि-हेरामनाकाम क्रोध आदिशत्रु तेरानाश करेंगे इसकारण तू जागता रह, यह शब्दराजाके कान में पहुँचे तब वह मन में कहनेलगा। कि—यह आज नया पहरेदार कौन आगया है, इस के विचार बहुत अच्छे मालूम होते हैं, प्रातःकाल को खोज करनेपर राजाको विदित हुआ। कि यह हमारे यहाके पहरेदार का ही लडका है, तब राजाने प्रसन्न होकर उस को एक हजार रुपये इनाम दिये उस ने वह न लिये और बापके ऊपर डालकर आप अलगहोगया

और पहिले की समान साधुसन्तों की सेवा में समय बितानेलगा केवल उदर के निर्वाहमात्र को जूते बनाने आदि का अपना कार्य करता था, बाकी सब समय ईश्वरकी सेवा में बिताता था, ऐसा होते२ एक दिन श्रीकृष्ण परमात्मा साधुके वेष में उस के पास आये और प्रसन्न होकर उस को पारस पत्थर दिया, परन्तु उस ने पारसका लेना भी स्वीकार नहीं किया कितने ही पुरुष कहते हैं कि पारस कोई वस्तु है ही नहीं, परन्तु यह बात ठीक नहीं है, नेपाल में श्रीपशुपति महादेवजी की मूर्त्ति पारसपत्थर की है, उस के संसर्ग से लोहा सोना बनजाता है, यह बात बहुतों के देखने में आई है, हरसाल वहां थोडासा सोना इसप्रकार तयार करके और उसके ऊपर यह अमुकवर्षका सोना है, ऐसे अक्षर लिखकर वह राज्य के खजानेमें रक्खाजाताहै, अस्तु। वह पारसउसने नहीं लियातब साधु वेषधारी श्रीकृष्णजीने उस को एक शालिग्रामकी मूर्त्ति दी, वह उस ने प्रसन्न हो कर लेली और बड़ी भक्तिसे उसकी पूजा करनेलगा। मैं चमारहूँ, सो यदि मेरे घर शालिग्राम की मूर्त्ति ब्राह्मणोंने देखली तो वह मुझे निषेध करके मुझ से छीनलेंगे, इसकारण वह अपनी शालिग्राम की मूर्त्ति को चमड़े की थैली में ही बन्द रखता था केवल पूजा के समय ही बाहर निकालता था, इन शालिग्राम से उस को प्रतिदिन एक मुहर मिलती थी, परन्तु वह उस को कुछ न समझकर घर के एक कोने में फेंकदेता था, ऐसा होते२ एकसमय श्रीकृष्णजी के साथ एक सहस्र के समीप साधु रोहित दास के यहां भोजन पानेको आये रोहितदास का ईश्वर के ऊपर पूरा विश्वास था, इसकारण उसने कुछ न घबड़ाकर उन सब के आदर सत्कार करने की योजना करके ईश्वर की प्रार्थना करी तब उन में से एक साधु (साधुरूप धारी श्रीकृष्ण] ने समीप के कोने में से मोहरें इकट्ठी करके और उन को बाजार में बेचकर सीधा सामान खरीदा और उसी दिनका कार्य

पलता किया, यह सब बात उसी सब ग्राम में फैलकर अन्त में राजा के कानतक भी पहुँची, राजा को सन्देह हुआ कि -इस का पिता मेरे यहाँ पहरेदार है सो इस ने मेरे यहाँ से चोरी करी होगी, यह विचारकर उस के घर की तलाशी ली, परन्तु चोरी करने का कुछ प्रमाण न मिला और अन्त में शालिग्राम की मूर्ति और मोहरों का सब समाचार मालूम हुआ। तब राजाने उस से जबरदस्ती शालिग्राम की मूर्ति छीनली, और मन में विचार किया कि-यह एक मेरी नई जायदाद होगई, इसकारण उस शालिग्राम की मूर्ति को चारों ओरसे खूब चौकी पहरे में रक्खा, परन्तु ईश्वर की इच्छा से वह शालिग्राम की मूर्ति फिर रोहितदासके पासही आगई, राजा ने फिर रोहितदास से लेकर और भी बन्दोबस्त में रक्खी, तथापि वह फिर रोहितदास की थैली में ही जाकर पहुँचगये, तब तो राजाने बडे आश्चर्य में होकर उस विषय में खोज करने का उद्योग किया, परन्तु कुछ पता नहीं लगा, ऐसे अनेकों चमत्कार रोहितदास में देखेगये, इसकारण इनको 'यह अद्वितीय ईश्वरभक्त हैं' ऐसा मानने लगे, फिर एक दिन कोई एक ब्राह्मण काशी की यात्रा को जारहाथा, रोहितदास ने कुछ पूजा की सामग्री उस को देकर कहा कि आप यह पूजा की सामग्री मेरी ओर से श्रीगङ्गाजी को समर्पण करके मेरा नमस्कार कहना। काशी में पहुँचनेपर उस ब्राह्मण ने वह सामग्री गङ्गाजी को समर्पण करी, उससमय गङ्गाजी ने अपना प्रत्यक्ष हाथ बाहर निकालकर अपने प्रसादका चिन्हरूप एक अमूल्य कङ्कण रोहितदास के लिये उस ब्राह्मण को दिया, उस कंकण को देखकर ब्राह्मण के मन में लोभ उत्पन्न हुआ, सो रोहितदास से उस के विषय में कुछ न कहकर वह कंकण उस ने अपने पास ही रहनेदिया, और कुछ दिनों के अनन्तर बेचने को निकाला, ऐसे बहुमूल्य पदार्थ को कोई साधारण पुरुष तो लेही

नहीं सकता ! होतेर वह कंकण राजा के जवाहरखाने तक पहुँचा और वह जवाहरखाने के प्रबन्धकर्त्ता के मन को ऐसा अच्छा लगा कि चाहे जो कुछ मूल्य देकर उस के जोड़ का कंकण मंगाने के लिये राजा से हठ करी, राजा ने उस ब्राह्मणको बुलवाकर कहा कि–इस के जोर का कंकण लाकरदो, जो कुछभी कीमत लगेगी, उसकी वही कीमत मैं तुमको दूंगा, परन्तु दश पन्द्रह दिनके भीतर यदि दूसरा कंकण लाकर नहीं देगा तो तेरा शिर कटवालिया जायगा यह सुनकर ब्राह्मण घबड़ाया और उस को यह नहीं सूझी कि–मैं अब क्या करूं, अन्त में निरुपाय होकर वह रोहितदासके पास आया और उनके चरणों में पड़कर अपने अपराध को क्षमाकराने के लिये तथा आईहुई विपत्ति को टालने के लिये उनसे प्रार्थना करी, रोहितदास ने उत्तर दिया कि–घबड़ाने की कोई बात नहीं है जो कुछ ठीक२ समाचारहो वह कथनकर, तब ब्राह्मण ने सब वृत्तान्त सुनाया, उसको सुनकर कहा कि–बस यही बात है ! इस के लिये कुछ चिन्ता मतकर ! श्रीगंगामइया कृपाकरेगी, वह हमसे दूर थोड़ेही है !–'मन चंगा तो कठौती में गंगा' ऐसा कहकर रोहितदास ने कठौती में जलभरा और दूसरा कंकण पाने के लिये प्रेम के साथ श्रीगंगा की प्रार्थना करी तब उस कठौती में सेभी गङ्गा ने प्रत्यक्ष हाथ बाहर निकालकर कंकणदिया, उस को लेकर ब्राह्मण राजा के पास गया और सब वृत्तान्त राजा को सुनाया, उस से रोहितदासके सच्चा साधु होनेका राजा को निश्चय होगया और उस दिनसे वह उनकी बहुत कुछ प्रतिष्ठा करनेलगा, इसप्रकार भक्तिशिरोमणि रोहितदास की चारोंओर प्रसिद्धि हुई और अन्त में वह मुक्तहोगये। इसप्रकार चमार कीसी नीचजाति में उत्पन्न होकरभी रोहितदास को इतनी योग्यता को प्राप्त हुए और अन्त में सद्गति पाई, यह सब उनके शुद्धाचरण का और

उन के उद्धार के लिये जो उन के गुरु स्वामी रामानन्द जी ने उन के उद्देश्य से श्राद्ध आदि कर्म किये थे तिस का ही फल था, इसकारण किसी को भी शास्त्र में कहे हुए श्राद्ध आदि कर्म के करने में आलस्य नहीं करना चाहिये।

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः।

व्याख्यान दशवाँ।

विषय-रामनाम की महिमा और अवतार।

कल्याणानां निधानं कलिमलमथनं पावनं पावनानां पाथेयं यन्मुमुक्षोः सपदि परमपदप्राप्तये प्रस्थितस्य। विश्रामस्थानमेकं कविवरवचसां जीवनं सज्जनानां, बीजं धर्मद्रुमस्य प्रभवतु भवतां भूतये रामनाम।

सनातनधर्म रूपी रंग खेलनेके लिये सभासद्‌रूपी खिलाडी तयार होरहे हैं। यह कर्मकाण्ड रूपी कुंकुमों में ज्ञानरूपी गुलाल भरकर एक दूसरे के ऊपर फेंकरहे हैं, प्रेमरूपी पिचकारी से उनका हृदय रूपी वस्त्र रँगगया है और उपासनारूपी लेपन की सुगन्ध से उन का मस्तक भररहा है, ऐसे इसरंग में दंग होकर सकल सभासद् आशा है-हरे राम हरे राम, राम राम हरे हरे। हरेकृष्ण हरे कृष्ण, कृष्ण कृष्ण हरे हरे। इसप्रकार हरिनाम का स्मरण, करते रहेंगे। कलतक जो नौ व्याख्यान हुए, इन के अनुसार वर्त्ताव करने से निःसन्देह इसलोक और परलोक में कल्याण होगा। मैंने भक्तिमार्ग के व्याख्यान में पुनर्जन्म का थोडासावर्णन करके दृष्टान्तरूपसे मीराबाई की कथा भी कही थी। वह भक्ति-' श्रवणं कीर्त्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम्। अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्म निवेदनम्' अर्थात् विष्णुभगवान् का श्रवण, कीर्तन, स्मरण, चरणसेवन, पूजन वन्दन और दासभाव, ऐसे नौ प्रकारकी है तिन में से आज स्मरण भक्ति के विषय में कुछ विचार करने की इच्छा है, क्योंकि-यह

व को सब जगह तथा सब काल में सुलभ है और परमेश्वर की प्राप्ति
। सहज तथा उत्तम उपाय है । भगवान् का कोई नाम भक्ति के
।थ मुख से उच्चारण करने पर, उस से पुण्यप्राप्त होकर अन्त में
वर की प्राप्ति होती है, तथापि उस में भी रामनाम की महिमा
शेष है, इसका कारण आगे चलकर इसी व्याख्यान में आप के
दित होजायगा । किसी भी मनुष्य को उस के नाम से पुकारने
' वह तत्काल अपने पास आकर उपस्थित होजाता है तैसे ही पर-
वर को चाहे जिस नाम से पुकारो वह आपके समीप आवेंगे,क्योंकि-
। के नाम अनन्त हैं,इसपर भगवान् पतंजलि कहते हैं कि--'तस्य
चक: प्रणवः । ' (समाधिपाद)। अर्थात् उस परमेश्वर का
चक प्रणव (ॐकार) है, यही भगवान् का मुख्यनाम है, क्यों-
--इसनाम में भगवान् के सकल ऐश्वर्य का बोधहोता है । माण्डू
पनिषद् के आरम्भ में ही कहा है कि--'ओमित्येतदक्षरमिदं स
तस्योपव्याख्यानं भूतं भवद्भविष्यदिति सर्वमोङ्कार एव ।
न्यत्त्रिकालातीतं तदप्योङ्कार एव । ', अर्थात् ॐकार यह
र सर्वमय है, उस का हम उपव्याख्यान करते हैं, भूत, भविष्य
र वर्त्तमान जो कुछ है अर्थात् इन तीन कालों से जो परिच्छेद्य
वह सब ॐ काररूप ही है और जो त्रिकालातीत है, तीनोंकालों
जिसका परिच्छेद नहीं होसकता वह भी सब ॐ काररूप ही है।
ार, उकार और मकार यह जो प्रणव की तीन मात्रा हैं, उनसे
तीन वेद, तीन देवता, तीन गुण, तीन लोक, तीन तेज आदि उ-
न्न हुए हैं और इन तीन मात्राओं के आश्रय से ही वह रहते हैं।
प यदि कानों में अंगुलीदेलें तब जैसा अखण्ड नाद सुनने में आता
या हरद्वार में जैसा गंगाप्रवाह का ध्वनि एक समान चलरहा है,
। ही प्रणव का अप्रतिहत नाद चारों ओर भराहुआ है तथा सकल
।मात्रा और शब्द उसी से उत्पन्न हुए हैं, उसका अवलम्बन किये

बिना वाणी से कुछ उच्चारण ही नहीं होसकता। मृदङ्ग तबला आदि बाजोंपर थापदेकर भिन्न २ प्रकार की गतें छेड़नेपर जैसे उनथापों की रचना भिन्न २ प्रकार की होती है तिसी प्रकार प्रकृति के अनन्त व्यापारों के द्वारा इस ॐ कार से ब्रह्मांड में भिन्न २ प्रकार के पदार्थों की उत्पत्ति हुई है, प्रणव में की मात्राही आत्मा के पाद हैं, प्रणव में की अकारादि मात्राओं की आत्मा के भिन्न पादों से एकता करके जो प्रणव की उपासना करता है उसको भिन्न २ प्रकार के फल प्राप्तहोते हैं—'अकारो नियते विश्वमुकारश्चापि तैजसम्। मकारश्च पुनःप्राज्ञं,नामात्रे विद्यते गतिः ॥' (माण्डूक्योपनिषत्) अर्थात् प्रणव में अकार की प्रधानता है, ऐसा समझकर और आत्मा के प्रथम पाद से उसकी एकता करके जो प्रणव की उपासना करता है वह वैश्वानर होता है, उकार की दूसरे पादसे एकता करके जो उपासना करता है वह तैजस होता है और मकार की तीसरे पाद से एकता करके जो उपासना करता है वह प्राज्ञहोता है, तथा मात्रा रहित जो प्रणव वही केवल आत्मा है, ऐसा जानकर जो उसकी उपासना करता है वह तुरीया अवस्था पाता है अर्थात् शुद्ध ब्रह्मानन्द में निमग्न होता है। यह अवस्था प्राप्त होनेपर उपासक को और इस से उत्तम कोई गति मिलने-को शेष नहीं रहती है। सार यह है कि—स्थूल प्रपंच, जागरित स्थान और विश्व, यह तीन मिलकर प्रणव में का अकारभाग होता है। सूक्ष्म प्रपंच स्वप्न अवस्था और तैजस यह तीन मिलकर प्रणव में का उकार भाग है तथा स्थूल सूक्ष्म प्रपंच का कारण, सुषुप्ति स्थान और प्राज्ञ यह तीन मिलकर प्रणव में की मकारमात्रा है और मात्रा रहित जो प्रणव का रूप है वही ईश्वर का मूलरूप अर्थात् आत्मा की तुरीय अवस्था है, आत्मा के पाद और तुरीयावस्था का विस्तार के साथ वर्णन पीछे एक व्याख्यान में किया ही है, अस्तु। इसप्रकार ॐ कारके

चार विभागों से ईश्वर के सब गुणों का और ऐश्वर्य का बोध होता है, इस बातको स्पष्ट करने के लिये एक व्यावहारिक दृष्टान्त कहता हूँ, किसी इलाकेके स्वामीका नाम लक्ष्मीधरसिंह है, उसके साथ महाराज पद जोड़ा और आगे रायबहादुर पद जोड़ा तथा अन्त में के.सी.एस. आय्. इत्यादि पदवी को जोड़ने पर उनका पूरा नाम महाराज लक्ष्मीधरसिंह रायबहादुर के. सी. एस. आय्. ऐसा होकर, इस से उनके ऐश्वर्य का ज्ञान होता है तैसे ही ॐकार से ईश्वर के सकल ऐश्वर्य का ज्ञान होता है, अब लक्ष्मीधरसिंह के नौकर चाकर आदि मनुष्य हरएक व्यवहार में उनके उपरोक्त लंबे चौड़े नाम को नहीं लेते हैं किन्तु उस नाममेंसे सब अर्थको थोड़े ही में दिखानेवाले सारभूत अंश महाराज अथवा 'महाराजा साहब' ऐसा निकालकर, महाराज स्नान कररहे हैं, 'महाराजा साहब' कचहरीमें बैठेहैं, इत्यादि रीति से व्यवहार करते हैं, तैसे ही ॐकार के द्वारा वर्णन कियेहुए ईश्वर के स्वरूप का साधारण बुद्धि के मनुष्य की समझ में आना कठिन है, ऐसा जानकर ॐकार में से सारभूत अंश निकालकर उसकी उपासना करना शास्त्रकारों ने बतादिया है। वह सारभूत अंश 'रामनाम' है, यदि कोई कहे कि कैसे ? तो इसको स्पष्ट करने के लिये थोड़ासा विचारकरनेकी आवश्यकता है, ॐकार से ही सब वर्णमाला की उत्पत्ति हुई है यह बात पीछे कहही चुकेहैं, उस वर्णमाला में के र,म, यह दो अक्षर बड़ी महिमा से युक्त हैं इसकारण इनको ॐकार के शिरोभाग में लिखने की रीति पड़ी है अर्थात् उसके मस्तक पर ँ ऐसा चिन्ह लिखाजाता है, उसमेंसे आधे चन्द्रमा की समानभाग रेफको दिखाताहै और बिन्दु (अनुस्वार) मकार को दिखाता है। 'अलतुम्बिकान्यायेन रेफस्योर्द्ध्वगमनम्' ऐसी संस्कृत की कहावत है अर्थात् जैसे पानी के ऊपर तुम्बी तैसे

ही रेफ सब वर्णों के मस्तकपर आता है और मोऽनुस्वारः यह पाणिनी का सूत्र है, इससे मकार का बिन्दु (अनुस्वार) होजाता है। इसकारण ~ ऐसे चिन्ह का अर्थ ' र्, म् ' हुआ, व्यंजन वर्ण का उच्चारण स्वर की सहायता, के बिना नहीं होसकता, इसकारण पाणिनि ने 'ह य व र ट् 'इत्यादि सूत्रों में ' ह्-व् ' इत्यादि हरएक व्यंजन मे अकार जोडकर संस्कृत की वर्णमाला दिख ई है। इसीप्रकार 'र्—म् इन दोनों मेंभी आकार मिलाकर राम ऐसा सबके उच्चारण करने योग्य तारकमंत्र निकलआताहै उस मे ही ॐकार का सर्वस्व आजाने के कारण उसका जिस अक्षर के साथ योग होगा अर्थात् उनका दर्शक रेफ अनुस्वाररूप चिन्ह जिस अक्षर के मस्तक पर चढला जायगा, उस अक्षर में अद्भुत मंत्र शक्ति आजायगी इस विषय में एक दोहा प्रसिद्ध है—' एकछत्र एक मुकुटमणि सब वर्णनपर जोग। तुलसी रघुवर नाम के वर्ण विराजतदो ॥ ' इस रीतिसे 'ॐ' यह पृथ्वी बीज, 'रँ' अग्नि बीज, 'वँ' वरुणबीज और 'यँ' वायुबीज इत्यादि' मंत्रशास्त्र में प्रसिद्ध अनेकों मंत्रबीजों की उत्पत्ति कही है। तिन २ मंत्रों का जप करने पर वह २ देवता प्रसन्न होकर हमको विशिष्ट फल प्राप्त होता है, उदाहरण के लिये देखलो—रँ इसबीज मंत्र का जप करने पर अग्निदेव के प्रसन्न होने से हम को तेज आदि गुणप्राप्त होते हैं, हमारे शरीर को ताप होनेपर वँ इस बीज मंत्र का जप करना चाहिये तब वरुण देवता की प्रसन्नता से

(१) बहुतों को शंका होगी कि—र् म् से राम बनाने में तो र् में आ मिलाना चाहिये, यह शंका ठीक है परन्तु संस्कृत की वर्णमाला में ' आ ' भिन्न अक्षर नहीं है किन्तु ' अ ' मे ही इस का समावेश किया है। 'अ' के ह्रस्व दीर्घ आदि अठारह भेद हैं, उन सब का एक ह्रस्व अकारसे ही ग्रहण होजाता है, यह लघु कौमुदी पढ़नेवालेभी जानते होंगे।

ताप शान्त होगा, ऐसे ही अन्य बीज मंत्रों के विषय में भी जानो।-इनबीज मंत्रों में की शक्ति को आजकल के जडपदार्थ वादी नहीं मानते हैं, परन्तु मैं उन से यह बात कहता हूँ, साधारणरूप से दो अक्षरों का एकसाथ उच्चारण करने पर ही उनमें आप को विलक्षण शक्ति दीखती है। देखो–किसी को लक्ष्य करके 'मूर्ख' इतना कहते ही तत्काल उसको क्रोध आजाता है और उस के नेत्रलाल २ हो जाते हैं, इसके विपरीत, यदि उस को क्रोध आरहा हो उस समय कृपासागर, हुजूर, दयावान्, आदि शब्दों से उसकी प्रार्थनाकी जाय तो उसका क्रोध शान्त होजाता है। इसप्रकार साधारण अक्षरों के संयोग से भी जब ऐसी शक्ति आप के देखने में आती है तो जिनमें शास्त्र विशेष शक्ति बताता है उनबीज मंत्रों का जप करने पर इष्ट कार्य की सिद्धि क्यों नहीं होगी ? अवश्य होगी, केवल जप विधि पूर्वक होना चाहिये, योग्य ढंगकरके अच्छी भूमि में बीज बोने से जैसे अन्नकी उत्पत्ति अच्छी होती है तैसे ही अधिकारीकी शुद्धदशा में, योग्यस्थान पर और योग्य समय में मंत्र का जप करने से उत्तम सिद्धि होती है, जप करते में मंत्र के अर्थ का चिन्तवन करना चाहिये। भगवान् पतञ्जलि कहते हैं कि–' तज्जपस्तदर्थभावनम् ' (समाधिपाद) मंत्र का जप करना होयतो उस के अर्थका चिन्तवन करता हुआ एकाग्र चित्त से करे, नहीं तो इधर मंत्रका उच्चारण होरहा है और मनमें, किसी बडे भारी शहर में जाकर स्वामी को प्रसन्न करने के लिये बढिया घोडा खरीद ने की युक्ति चलरही है, इधर माला के कितने दाने फिरगये इस की कुछ सुध नहीं है, परन्तु उधर घोडे की कीमत के रुपये ठीक २ गिनकर दिये जारहे हैं,ऐसा करने पर मंत्रकी सिद्धि कैसे हो ? जहां सहस्र जप करना चाहिये तहाँ यदि सौही किया अथवा मंत्रकी सांगता के लिये जहाँ सौ ब्राह्मणों को भोजन करना चाहिये तहाँ यदि पाँच ही को भोजन कराया

वो फल भी उतना ही कम मिलेगा और कहीं तो कुछ मिलेहीगा नहीं, यदि किसी को भात पकाना हो तो अग्नि, जल, चावल आदि सामग्री का प्रबन्ध उसको अवश्य ही करना चाहिये । इन में से एक भी साधन नहीं होगा या एक भी साधन में कमीहोगी तो काम सिद्ध नहीं होसकेगा, अग्नि का अभाव होगा अथवा भातके नीचे एक चिनगारी ही होगी तो भात नहीं पकेगा, तैसे ही पानी बिलकुल नहीं होगा अथवा दशसेर चावलों में पावभरही पानी पड़ेगा तो भात नहीं पकेगा, तिसी प्रकार यथोचित समय न लगायागयगा या कर्त्ता अनाड़ी होगा तो भात नहीं पकेगा । सार यह है कि- छोटे बड़े सब ही कामोंमें साधन में कुछभी खराबी होने से कार्य सिद्ध नहीं होगा । फिर मंत्रशास्त्र के प्रयोग में दोष होने से कार्य सिद्धि कैसे होसकती है, अर्थात् इष्ट कार्यकी सिद्धि होने के लिये मंत्रका अनुष्ठान विधिपूर्वक होनाचाहिये । ॐकारका सारभूत अंश होने के कारण, रामनाम में ॐ कारका सब प्रभाव आगया है और साधुसन्तोंने इसकी बहुत कुछ महिमागाई है । सूर्य आदि सब तेज ॐकार से ही उत्पन्न हुए हैं, और वह सब उसके ही आश्रय से रहते हैं, यह बात पीछे कहही चुके हैं, इसी प्रकार रामनाम के विषय में तुलसीदास महाराजभी कहते हैं कि-'बन्दौं रामनाम रघुवर के । हेतु कृशानु भानु हिमकरके ॥' अर्थात् कृशानु-अग्नि, भानु=सूर्य, हिमकर=चन्द्रमा । कृशानु, भानु और हिमकर का कारण जो रामनाम तिसको वन्दना करो । रामनाम कृशानु-भानु और हिमकर कई प्रकार से हेतु है इसकारण इस चौपाई के कई अर्थ होसकते हैं । (१) पहिला अर्थ तो यह है कि-राम इस पदमें र-अ-म, यह तीन अक्षर हैं और तीनों क्रमसे कृशानु, भानु, भानु और हिमकर इन तीनों देवताओं के बीज हैं, इसकारण राम यह पद उनका हेतु है, अधिक तो क्या यदि उन तीनों शब्दों का अर्थ

न लेकर केवल शब्द कोही लियाजाय तब भी उन शब्दों में ऊपर के तीनो वर्ण क्रमसे विद्यमान हैं और उन वर्णोंके द्वारा ही उनको उन शब्दों की शक्ति मिलीहुई है, उन शब्दों में से तिनवर्णों को निकाल लियाजाय तो वह शब्दही निरर्थक होजायँगे, इसकारण राम यह पद कृशानु आदि शब्दों की उत्पत्ति का कारण है। यदि कोई कहे कि–यह शब्द पाण्डित्य है, इसमें अर्थ कुछ नहीं है तो उनलोगों के समाधान के लिये दूसरा अर्थ दिखाते हैं। (२) दूसरा अर्थ यह है कि–अग्नि पाचक रूपसे चार प्रकार के भोजन को पकाकर प्राणियों के शरीर का पोषण करता है, सूर्य से प्रकाश मिलकर और आरोग्य की रक्षाहोकर सब के व्यवहार सुन्दरता के साथ चलते हैं और चन्द्रमा से वनस्पतियों का पोषण होकर उनसे सब प्राणियों को सहायता मिलती है, इसप्रकार प्राणीमात्र की जीवनयात्रा के कारण जो कृशानु आदि तीन देवता, उनके विषें वह शक्ति रामरूप तेज सेही प्राप्तहुई है। (३) तीसरा अर्थ यह

(१) कृशानु, इस शब्द में र, भानु, शब्द में अ, और हिमकर शब्द में म, यह अक्षर हैं, बोलचाल में इन शब्दों के उच्चारणको लेकर यह बात है। वास्तव में देखाजायतो कृशानु शब्द में र, स्पष्ट नहीं है किन्तु ऋ है, परन्तु कृशानु शब्दका अपभ्रंश क्रशानु लियाजाय तो र स्पष्ट दीखेगा अथवा कृशानु ऐसा शुद्धही रूप लियाजाय तो इसमें केभी ऋकार में संस्कृत व्याकरण के अनुसार रेफका अंश है, ऐसा मानलेने में भी अर्थकी संगति बैठ जायगी।

(२) यदादित्यगतंतेजो जगद्भासयतेऽखिलम्। यच्चन्द्रमसि यच्चाग्नौतत्तेजोविद्धिमामकम् ॥ गामाविश्य च भूतानि धारयाम्यहमोजसा। पुष्णामि चौषधीः सर्वाः सोमोभूत्वा रसात्मकः ॥ अहंवैश्वानरोभूत्वा प्राणिनां देहमाश्रितः। प्राणापान समायुक्तः पचाम्यन्नं चतुर्विधम् ॥ (भगवद्गीता १५ अध्याय) ॥

है कि-कृशानु-भानु और हिमकर इन तीनोंका अर्थात् तीनो कुलोंको उत्कर्षका हेतु रामनामही है, अग्निवंश में परशुराम उत्पन्नहुए, सूर्यवंश में दशरथकुमार रामचन्द्र हुए और चन्द्रवंश में बलराम हुए, इन तीनों ही का रामनाम प्रसिद्ध है। इसप्रकार रामनाम उ-परोक्त तीनों कुलों के उत्कर्ष का हेतु है। (४) चौथा अर्थ यह है कि-शरीर में मुख्यरूप से इडा, पिंगला और सुषुम्ना यह तीन नाडियें हैं। नासिका के बाम ओर के छिद्र में को जब श्वास पूर्ण रीति से चलता है तो उस को इडा वा चन्द्रनाड़ी कहते हैं। ना-सिका के दाहिने छिद्र में को जब श्वास पूर्णरीति से चलता है तो उस को पिंगला वा सूर्यस्वर कहते हैं, जब नासिका के दोनों छिद्रों में से एकसाथ वेग से श्वास चलता है तो उस को सुषुम्ना वा अग्नि-नाड़ी कहते हैं। यह नाडियें किन नियमों से चलती हैं इसका वर्णन स्वरोदयशास्त्र में विस्तार के साथ किया है, इससमय उस के वर्णन का अवसर नहीं है। हिमकर, भानु और कृशानु इन शब्दों के द्वारा क्रम से उन तीनों नाडियों का बोध होता है और उन का सब आ-धार रामरूप चैतन्य के ऊपरही है। इसप्रकार रामरूपतेज प्राणी-मात्र के जीवनका कारण है और वह सर्वत्र व्यापरहा है। यदि दे-खाजाय तो सर्वत्र मनुष्यमात्र के नाम में 'राम' यह दो अक्षर पुरे हुए हैं अर्थात् चाहे जिस पुरुष का चाहे जितने अक्षरों का नाम हो तथापि अन्त में उसकी तान इन दो अक्षरों में ही टूटती है। इस वि-षय में गणित की सहायता से होनेवाला एक चमत्कार दिखाता हूँ- हरएक मनुष्यको चारप्रकार के पुरुषार्थ साधने होते हैं, इसकारण उस को अपना नाम (अपने नाम के अक्षरों की संख्या) चार से गुणा करना चाहिये और वह पुरुषार्थ पंचभूतों के आश्रय से सिद्ध होते हैं, इसकारण उस में पांच संयुक्त करदेय, पुरुषार्थोंके साधन

१ इसीकारण ज्योतिषमें रामशब्द को तीन संख्याका वाचक मानाहै।

का प्रयत्न करने में मनुष्यको सुख दुःख, मान अपमान आदि अनेकों द्वन्द्वों से झगडना पडता है इसकारण ऊपरोक्त संख्याको द्विगुण करे । अन्त में इस सब आठप्रकार की प्रकृति के पसारे के विवेकके द्वारा दूर करके सत्यस्वरूप में रमण करना होता है, इसकारण ऊपरोक्त गुणनफल में आठका भाग देकर बाकी निकालोगे तो तो दो ही शेषरहेंगे, वही 'राम' यह दो अक्षर सत्य हैं । उदाहरण के लिये देखो—देवदत्त इस नाम को लेलो, इस में के अक्षरों की संख्या को चारसे गुणा करके पाँच मिलानेपर इक्कीस होते हैं और इस को द्विगुण करके आठका भाग देनेपर दो ही शेष रहते हैं वही 'राम' इन दो अक्षरों के दर्शक हैं । इसीप्रकार चाहे जिस नामके विषय में देख लो, यह केवल गणित का मनोरञ्जक चुटकुला कहाहै, परन्तु व्यवहार में भी रामशब्द में विशेष तेज सूचित होता है । किसी मनुष्य में तेज का अभाव दिखाना होता है तो उस में कुछ आराम नहीं है ऐसा आप कहते हैं । रामरूप शक्ति का एकप्रकार आश्रय छुटा कि-ऊपर कही हुई तीन नाड़ियें बन्द होजाती हैं और मरण होजाता है उससमय रामका नाम सत्य है सब मिथ्या है ऐसा निश्चय करके सबलोग शव के पीछे २ राम नाम सत्य है ऐसा कहतेहुए जाते हैं । इसी रामनामके बल से ही समुद्रमंथन के समय उत्पन्न हुआ दुर्धर कालकूट विष शङ्कर ने पीलिया था । रामनामके माहात्म्यको श्रीशंकर पूर्णरीति से जानते हैं । एकसमय भोजन की तयारी होनेपर शिवजी ने पार्वती को भोजन के लिये बुलाया तब पार्वतीजी कहनेलगीं कि मुझे तो अभी विष्णुभगवान्के सहस्र नामों का पाठ करना है, निवटकर भोजन करूँगी, शिवजी ने इस का उत्तर दिया कि—

राम रामेति रामेति रमे रामे मनोरमे सहस्रनाम तत्तुल्य श्रीरामनाम वरानने ।

अर्थ सहस्र नामों का सब सार एक रामनाम में ही भराहुआ है, मैं

अखंड रामनाम में ही मग्न रहता हूँ । इसप्रकार पार्वतीने शिवजी से रामनामकी महिमा सुनी,पार्वतीजीसे गणेशजीने सुनी,उस रामनाम के अवलम्बन से गणेशजी को सब से आगे पूजन मिलता है।एक समय इन्द्रादि देवताओं में श्रेष्ट कौन है ? इस बातपर विवाद हुआ और सब अपनी ही पूजा सकल कार्यों में पहिले हो, ऐसा चाहने लगे तथा सब मिलकर निर्णय करानेके लिये ब्रह्माजी के पासगये, उन्होंने कहा कि—जो ब्रह्मांडकी प्रदक्षिणा करके सबसे आगे जायगा वही श्रेष्ठ है, उसकी ही सब से प्रथम पूजा होगी । तब तो सबने अपने २ वाहनों को तयार करके ब्रह्मांड की प्रदक्षिणा करने का उद्योग किया, यहबात सुनतेही गणेशजी को दाहहुआ परन्तु उनकी सवारी में तो चूहे मामाजी थे, इसकारण इस विषय में जय मिलने की उनको कुछ आशा नहीं रही अतः मलिनमुख होकर एकान्त में बैठ विचार करनेलगे, यह दशा देख पार्वतीजीने बूझा कि—तू खिन्नमुख क्यों होरहा है ? कारण बताते ही पार्वती जीने उत्तर दिया कि—भय न कर मैं तुझको युक्ति बताती हूँ कि—रामनाम यह ॐ कारका मथाहुआ अर्थ है और ॐकार से सब ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति हुई है, इसकारण मुखसे रामनाम का उच्चारण करके और मनसे उसके अर्थ की ॐकार से एकता करके उसके चारों ओर तू प्रदक्षिणा कर,तो एकक्षण में ही तू अनन्त ब्रह्माण्डकी प्रदक्षिणा करलेगा, यह सुनकर और इसीप्रकार करके गणेश जी उसी समय ब्रह्माजी के पास गये और कहने लगे कि—मैंने सकल ब्रह्माण्ड की प्रदक्षिणा करली, ब्रह्मा जी आश्चर्य में होकर मन में विचारने लगे कि—यह पोंदीली मूर्ति, चूहे की सवारी, सकल ब्रह्माण्ड की परिक्रमा इतनी शीघ्र कैसे होगई ? परन्तु अन्तर्दृष्टि से देखा मालूम हुआ कि—बातठीक है और गणेशजी का वाहन चूहा ही अनन्त ब्रह्माण्डके चारों ओर वेग के साथ फिरता रहा है । फिर

का प्रयत्न करने में मनुष्यको सुख दुःख, मान अपमान आदि अनेकों द्वन्द्वों से झगड़ना पड़ता है इसकारण उपरोक्त संख्याको द्विगुण करे। अन्त में इस सब आठप्रकार की प्रकृति के पसारे के विवेकके द्वारा दूर करके सत्यस्वरूप में रमण करना होता है, इसकारण उपरोक्त गुणनफल में आठका भाग देकर बाकी निकालीजायगी तो तो दो ही शेषरहेंगे, वही ' राम ' यह दो अक्षर सत्य हैं। उदाहरण के लिये देखो—देवदत्त इस नाम को लेलो, इस में के अक्षरों की संख्या को चारसे गुणा करके पाँच मिलानेपर इक्कीस होते हैं और इस को द्विगुण करके आठका भाग देनेपर दो ही शेष रहते हैं यही 'राम ' इन दो अक्षरों के द्योतक हैं। इसीप्रकार चाहे जिस नामके विषय में देख लो,यह केवल गणित का मनोरञ्जक चुटकुला कहाहै, परन्तु व्यवहार में भी रामशब्द में विशेष तेज सूचित होता है। किसी मनुष्य में तेज का अभाव दिखाना होता है तो उस में कुछ आराम नहीं है ऐसा आप कहते हैं। रामरूप शक्ति का एकप्रकार आश्रय छूटा कि--ऊपर कही हुई तीन नाड़ियें बन्द होजाती हैं और मरण होजाता है उससमय रामका, नाम सत्य है सब मिथ्या है ऐसा निश्चय करके सबलोग शव के पीछे २ राम नाम सत्य है ऐसा कहतेहुए जाते हैं। इसी रामनामके बल से ही समुद्रमंथन के समय उत्पन्न हुआ दुर्धर कालकूट विष शङ्कर ने पीलिया था। रामनामके माहात्म्यको श्रीशंकर पूर्णरीति से जानते हैं। एकसमय भोजन की तयारी होनेपर शिवजी ने पार्वती को भोजन के लिये बुलाया तब पार्वतीजी कहनेलगीं कि मुझे तो अभी विष्णुभगवान्के सहस्र नामों का पाठ करना है, निवटकर भोजन करूँगी, शिवजी ने इस का उत्तर दिया कि—

राम रामेति रामेति रमे रामे मनोरमे सहस्रनाम तत्तुल्यं श्रीरामनाम वरानने।

अर्थ सहस्र नामों का सब सार एक रामनाम में ही भराहुआ है, मैं

अखंड रामनाम में ही मग्न रहता हूँ। इसप्रकार पार्वतीने शिवजी से रामनामकी महिमा सुनी, पार्वतीजीसे गणेशजीने सुनी, उस रामनाम के अवलम्बन से गणेशजी को सब से आगे पूजन मिलता है। एक समय इन्द्रादि देवतओं में श्रेष्ट कौन है ? इस बातपर विवाद हुआ और सब अपनी ही पूजा सकल कार्यों में पहिले हो, ऐसा चाहने लगे तथा सब मिलकर निर्णय करानेके लिये ब्रह्माजी के पासगये, उन्होंने कहा कि–जो ब्रह्मांडकी प्रदक्षिणा करके सबसे आगे जायगा वही श्रेष्ठ हैं, उसकी ही सब से प्रथम पूजा होगी। तब तो सबने अपने २ वाहनों को तयार करके ब्रह्मांड की प्रदक्षिणा करने का उद्योग किया, यहबात सुनतेही गणेशजी को दाहहुआ परन्तु उनकी सवारी में तो चूहे मामाही थे, इसकारण इस विषय में जय मिलने की उनको कुछ आशा नहीं रही अतः मलिनमुख होकर एकान्त में बैठ विचार करनेलगे, यह दशा देख पार्वतीजीने पूछा कि—तू खिन्नमुख क्यों होरहा है ? कारण बताते ही पार्वती जीने उत्तर दिया कि–भय न कर मैं तुझको युक्ति बताती हूँ कि–रामनाम यह ॐ कारका यथाहुआ अर्थ है और ॐकार से सब ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति हुई है, इसकारण मुखसे रामनाम का उच्चारण करके और मनसे उसके अर्थ की ॐकार से एकता करके उसके चारों ओर तू प्रदक्षिणा कर तो एकक्षण में ही तू अनन्त ब्रह्माण्डकी प्रदक्षिणा करलेगा, यह सुनकर और इसीप्रकार करके गणेश जी उसी समय ब्रह्माजी के पास गये और कहने लगे कि–मैंने सकल ब्रह्माण्ड की प्रदक्षिणा करली, ब्रह्मा जी आश्चर्य में होकर मन में विचारने लगे कि–यह थोंदीली मूर्ति, चूहे की सवारी, सकल ब्रह्माण्ड की परिक्रमा इतनी शीघ्र कैसे होगई ? परन्तु अन्तर्दृष्टि से देखा मालूम हुआ कि–बातठीक है और गणेशजी का वाहन चूहा ही अनन्त ब्रह्माण्डके चारों ओर वेग के साथ फिरता रहा है। फिर.

पूछा कि–गणेशजी यह गुर तुमको किसने बताया? तब गणेशजी ने उत्तर दिया कि-सब योगियों में मुकुटमणि और परमरामोपासक शिवजी मेरे पिता हैं और मंत्रशास्त्र में परम प्रवीण आदि शक्ति पार्वतीजी मेरी माता हैं, इसकारण यह सब मेरे घरकी ही विद्या है, इसको सीखने के लिये दूसरे के पास जाने की आवश्यकता ही क्या है? अस्तु। उस दिन से उनकी अग्रपूजा और भी अधिक दृढ होगई तथा आजकल भी कार्य की निर्विघ्न सिद्धि के लिये हरएक कार्यमें पहिले गणेशजी का पूजन होता है यह बात सबको विदित ही है। कितने ही नये शिक्षित और अर्द्धशिक्षित कहते हैं कि–रामचन्द्र एक राजा थे और वह हमारी समान ही मनुष्य थे, परन्तु यह उनका कहना भूल से भरा है। रामचन्द्र जी यदि केवल मनुष्य ही होते तो समुद्र के ऊपर पत्थरों का पुल बाँधना आदि अलौकिक कार्य उनके हाथ से कैसे होते? उन के पास बडी २ तनख्वाह के इंजीनियर नहीं थे, उन्होंने नलनील आदि वानरों को समुद्र के ऊपर पुल बाँधने की आज्ञा दी उससमय उन वानरों के लाये हुए पत्थर पहिले तो समुद्रमें डूबनेलगे तब परम रामभक्त और रामनाम के माहात्म्य को जाननेवाले हनुमानजी ने तहां आकर न जाने क्या जादू सा करदिया। कि–उससे सबपत्थर तैरनेलगे, यदि कहे कि–वह जादू कौन साथा? तो किन्हीं पत्थरोंपर अलग२ 'राम' यह अक्षर लिखकर किन्हीं परदो२मिलाकर वह अक्षर लिखकर अर्थात् एकपत्थरपर 'रा' और दूसरे पर 'म, लिखकर उन पत्थरों को परस्पर मिलादिया तब तो वह सब पत्थर जल में छोडते ही तैरने लगे। आप जरा अपने हाथ से कटोरा भर जल में थोडीसी रेणुका डालिये, तो क्या वह तैरसकेगी परन्तु उन्नीसवीं शताब्दी में यंत्रशास्त्र आदि का प्रचार बहुत हुआ है, अतः यंत्रविद्या में प्रवीण आजकल का कोई बडाभारी विद्वान, हनुमान जी के मंत्रशास्त्र के किनारे से भी समता रखनेवाला कोई

यन्त्र बनासकता है क्या? अथवा आजकल के चक्रवर्ती राजाओं में भी कहीं ऐसी सामर्थ्य देखने में आती है क्या? जब वह शक्ति कहीं दीखतीही नहीतो श्रीरामचन्द्रजी को लोकोत्तर अथवा दिव्य मनुष्य (ईश्वर) थे ऐसा कौन कहेगा? अर्थात् वह यद्यपि मनुष्य की समान दीखते थे तथापि वह साक्षात् परमात्मा ही अवतरे थे, इस में किसी प्रकार का सन्देह नहीं है।'अवतार' शब्द का अर्थ है नीचे उतरना। वेदादिकों कोभी अगम्य और अनिर्वचनीय अपने परमोत्तम रूपसे परमेश्वरने भक्तजनों के कल्याण के लिये एक साधारण मनुष्य के सा रूप धारण किया,इसको परमेश्वर का अवतार कहते हैं। जो कोई उनके नामका स्मरण करके एकाग्रचित्त से उनका ध्यान करता है उसके ऊपर वह प्रसन्न होकर भक्तकी इच्छा के अनुसार दर्शन देते हैं। जैसे वायुके स्पन्द और निस्पन्द दोरूप हैं अथवा अग्नि के व्यक्ति और अव्यक्ति दो रूप हैं—(दोहा) एक दारुगत देखिये एकू। पावक युगसम ब्रह्मविवेकू॥ अर्थात् काष्ठ आदि में अग्निका अव्यक्त रूप है और व्यवहार आदि में स्पष्ट देखने में आनेवाला जो अग्नि है वह अग्निका व्यक्तरूप है। इसी प्रकार ईश्वर केभी साकार और निराकार अथवा सगुण और निर्गुण यह दो रूप हैं। कोई परमेश्वरके सगुणरूप की भक्तिकरते हैं और कोई निर्गुणरूप में मग्न रहते हैं। गुरु रामानन्दजी श्रीरामचन्द्रजी के साकाररूप के उपासक थे और कबीर निराकार रूपके उपासक थे। सार यह है कि—चतुर दुभाषी जैसे अपना अभिप्राय न्यायाधीश को अंगरेजी, हिन्दी, मराठी, गुजराती आदि उनकी इच्छित भाषा में समझादेता है तैसेही परमेश्वर अपने भक्तको उसकी इच्छानुसार रूपमें दर्शन देकर उसके मनोरथ को पूराकरते हैं। पहिले स्वायम्भुव मनु और उसकी स्त्री शतरूपाने परमात्मा का दर्शनपाने के लिये सहस्रों वर्षतक वनमें रहकर तीव्र तपस्या करी

तब भगवान् ने उनको चतुर्भुजी पीताम्बरधारी रूपसे प्रत्यक्ष दर्शन देकर वर माँगने के लिये कहा- तब उन दोनों ने कहा कि–हमको और कुछ नहीं चाहिये आप इसी रूपमें हमारे गर्भसे प्रकट होकर हमारे सकल मनोरथों को पूराकरिये, भगवान् ने भक्तवत्सल होने के कारण, उनके माँगेहुए वरको देकर, 'तुम्हारे ऐसाही पुत्रहोगा' ऐसा कहतेहुए उनको विश्वास दिलाया। फिर त्रेतायुग में वह दोनों दशरथ और कौसल्या हुए और उन के उदर में भगवान् श्रीरामचन्द्ररूप से अवतरे, यह प्रसिद्ध ही है जब कौसल्या के उदर में प्रविष्टहुए थे उससमय कौसल्या के गर्भ के सब चिन्ह यद्यपि अन्य साधारण स्त्रियों की समान ही प्रतीत होते थे, परन्तु वास्तव में परमात्मा का अन्य लोकों की समान गर्भवास से सम्बन्ध नहीं था। भगवान् के सब अवतार अयोनि सम्भव ही थे, उनके साथ गर्भवास का अथवा रजोवीर्य का किसी प्रकार का सम्बन्ध नहीं था, केवल उससमय कौसल्या के शरीर में परमात्मा का तेज फैल रहा था और उस के भीतर बाहर सर्वत्र रामरूप दीखता था, लौकिक रीति के अनुसार नौमहीने पूरे होते ही पहिले करे हुए सङ्केत के अनुसार भगवान् श्यामसुन्दर पाँच वर्ष के बालक की मूर्ति बनकर कौसल्या के सामने आकर खडे होगये, उस मूर्ति को देखकर कौसल्या ने प्रार्थना करी कि- इतने बडे रूप से लोग आपको मेरा पुत्र नहीं कहेंगे और उलटी हँसी उडावेंगे, इस कारण लोक व्यवहारके अनुसार बालक का रूप धारण करिये। तब भगवान् ने भक्तका मनोरथ पूरा करने के लिये भगवान् ने तत्काल बालक का रूप धारण किया और मनुष्य की समान सब लीलाएँ करके दिखाई। कोई २ कहते हैं कि–यह सब पुराणों की गप्पें हैं और पुराण थोडे ही दिनोंके बनेहुए हैं और कहीं तो उन में वृथा अतिशयोक्ति ही लिखी हैं। परन्तु यह उनका कहना ठीक नहीं

है, क्योंकि अथर्ववेद प्रपाठक ७ में--' ऋचः सामानि छंदांसि लेशिरं पुराणं यजुषा सह । ' इसप्रकार ऋग्वेद, सामवेद और यजुर्वेद के समान ही पुराणों की उत्पत्ति कही है । इसके सिवाय वेदों में परमात्मा के अवतारों कामी उल्लेख किया है, उसमें से कुछ प्रमाण दिखाकर आज के व्याख्यान को समाप्त करता हूँ । ऋग्वेद मण्डल ६ सूक्त ४३ मंत्र १८ में परमेश्वर के अवतार के विषय में साधारणरूप से कहा है--' रूपंरूपं प्रतिरूपो बभूव तदस्य रूपं प्रति चक्षणाय । इन्द्रो मायभिः पुरुरूप ईयते । ' अर्थात् इन्द्र कहिये षड्गुणैश्वर्य सम्पन्न भगवान् वत्सलता को प्रकट करने के लिये अपनी मायारूप शक्ति के द्वारा अनन्तों रूप धारण करते हैं, जैसी २ भक्त की भावना होती है और जिस समय जैसी आवश्यकता पडती है तैसे २ ही भगवान् के अवतार होते हैं । पीछे एक व्याख्यान में द्रौपदी की लज्जा रखने के लिये भगवान् ने वस्त्ररूप धारण किया, यह बात कहही चुके हैं । नृसिंहावतार के विषय में यह प्रमाण है--' प्रतद्विष्णुः स्तवते वीर्येण मृगो न भीमो कुचरो गिरिष्ठाः ॥ ' (ऋ० म० १ अध्याय २१), वामनावतार के विषय में प्रमाण है कि--' इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा निदधे पदम् ' (ऋग्वेद) इसीप्रकार रामावतार के विषय मे--' भद्रो भद्रया० ' इत्यादि सामवेद के उत्तर आर्चिक अध्याय १९ में लिखा है और ऋग्वेद मण्डल ४ में कृष्णावतार के विषय का उल्लेख है । शेष अवतारों के विषय में भी प्रमाण दिखाये जाते, परन्तु अवसर नहीं है और वेदो में अवतारों का उल्लेख होने के विषय में विश्वास होने के लिये यह दिखाये हुए प्रमाण ही पर्याप्त हैं । आज के व्याख्यान से अवतारों का क्या प्रयोजन है ? रामनाम की कैसी महिमा है ? उस में कैसी अद्भुत शक्ति है और वह कितना सहज तारकमंत्र है ? यह सब बातें आप के ध्यान में आगई होंगी, अतः परम पवित्र '

तब भगवान् ने उनको चतुर्भुजी पीताम्बरधारी रूपसे प्रत्यक्ष दर्शन देकर वर माँगने के लिये कहा–तब उन दोनों ने कहा कि–हमको और कुछ नहीं चाहिये आप इसी रूपमें हमारे गर्भसे प्रकट होकर हमारे सकल मनोरथों को पूराकरिये, भगवान् ने भक्तवत्सल होने के कारण, उनके माँगेहुए वरको देकर, 'तुम्हारे ऐसाही पुत्रहोगा' ऐसा कहतेहुए उनको विश्वास दिलाया । फिर त्रेतायुग में वह दोनों दशरथ और कौसल्या हुए और उन के उदर में भगवान् श्रीरामचन्द्ररूप से अवतरे, यह प्रसिद्ध ही है जब कौसल्या के उदर में प्रविष्टहुए थे उससमय कौसल्या के गर्भ के सब चिन्ह यद्यपि अन्य साधारण स्त्रियों की समान ही प्रतीत होते थे, परन्तु वास्तव में परमात्मा का अन्य लोकों की समान गर्भ वास से सम्बन्ध नहीं था । भगवान् के सब अवतार अयोनि सम्भव ही थे, उनके साथ गर्भवास का अथवा रजोवीर्य का किसी प्रकार का सम्बन्ध नहीं था, केवल उससमय कौसल्या के शरीर में परमात्मा का तेज फैल रहा था और उस के भीतर बाहर सर्वत्र रामरूप दीखता था, लौकिक रीति के अनुसार नौमहीने पूरे होते ही पहिले करे हुए सङ्केत के अनुसार भगवान् श्यामसुन्दर पाँच वर्ष के बालक की मूर्ति बनकर कौसल्या के सामने आकर खड़े होगये, उस मूर्ति को देखकर कौसल्या ने प्रार्थना करी कि- इतने बड़े रूप से लोग आपको मेरा पुत्र नहीं कहेंगे और उलटी हँसी उड़ावेंगे, इस कारण लोक व्यवहारके अनुसार बालक का रूप धारण करिये । तब भगवान् ने भक्तका मनोरथ पूरा करने के लिये भगवान् ने तत्काल बालक का रूप धारण किया और मनुष्य की समान सब लीलाएँ करके दिखाईं । कोई २ कहते हैं कि–यह सब पुराणों की गप्पें हैं और पुराण थोड़े ही दिनोंके बनेहुए हैं और कहीं तो उन में वृथा अतिशयोक्ति ही लिखी हैं । परन्तु यह उनका कहना ठीक नहीं

है, क्योंकि अथर्ववेद प्रपाठक ७ में-‘ ऋचः सामानि छंदांसि पुराणं यजुषा सह। ’ इसप्रकार ऋग्वेद, सामवेद और यजुर्वेद के समान ही पुराणों की उत्पत्ति कही है। इसके सिवाय वेदों में परमात्मा के अवतारों कामी उल्लेख किया है, उसमें से कुछ प्रमाण दिखाकर आज के व्याख्यान को समाप्त करता हूँ। ऋग्वेद मण्डल ६ सूक्त ४६ मंत्र १८ में परमेश्वर के अवतार के विषय में साधारणरूप से कहा है-‘ रूपंरूपं प्रतिरूपो बभूव तदस्य रूपं प्रति चक्षणाय। इन्द्रो मायभिः पुरुरूप ईयते। ’ अर्थात् इन्द्र कहिये षड्गुणैश्वर्य सम्पन्न भगवान् वत्सलता को प्रकट करने के लिये अपनी मायारूप शक्ति के द्वारा अनन्तों रूप धारण करते हैं, जैसी २ भक्त की भावना होती है और जिस समय जैसी आवश्यकता पडती है तैसे २ ही भगवान् के अवतार होते हैं। पीछे एक व्याख्यान में द्रौपदी की लज्जा रखने के लिये भगवान् ने वस्त्ररू धारण किया, यह बात कहही चुके हैं। नृसिंहावतार के विषय में यह प्रमाण है-‘ मतद्विष्णुः स्तवते वीर्येण मृगो न भीमो कुचरो गिरिष्ठाः ॥ ’ (ऋ० म० १ अध्याय २१), वामनावतार के विषय में प्रमाण है कि-‘ इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा निदधे पदम् ’ (ऋग्वेद) इसीप्रकार रामावतार के विषय मे-‘ भद्रो भद्रया० ’ इत्यादि सामवेद के उत्तर आर्चिक अध्याय १९ में लिखा है और ऋग्वेद मण्डल ४ में कृष्णावतार के विषय का उल्लेख है। शेष अवतारों के विषय में भी प्रमाण दिखाये जाते, परन्तु अवसर नहीं है और वेदो में अवतारों का उल्लेख होने के विषय में विश्वास होने के लिये यह दिखाये हुए प्रमाण ही पर्याप्त हैं। आज के व्याख्यान से अवतारों का क्या प्रयोजन है ? रामनाम की कैसी महिमा है ! उस में कैसी अद्भुत शक्ति है और वह कितना सहज तारकमंत्र है ? यह सब बातें आप के ध्यान में आहीगई होंगी, अतः परम पवित्र

वस्तुओं में पवित्र, मंगलों में मंगल रामनाम का एकवार सब मिलकर उच्चस्वर से कीर्तन करो और उसको अखण्ड हृदय धारण करो ।

हरेराम हरेराम, राम राम हरेहरे ।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण, कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥

प्रियमित्रो! आजदश दिनतक सन्ध्या, प्राणायाम, पुनर्जन्म श्राद्ध आदि भिन्न २ विषयों के सम्बन्ध में, अनेकों बातें मैंने पलोगों को अर्पण कीं, मुझे आशा है कि आप उनमें के दोषों त्यागकर नीरक्षीर न्याय से हसकी समान गुणोंको स्वीकार करें आप सब महाशयों ने दशदिनतक घरके आवश्यककार्योंको त्याग यहाँ अनेकों कष्ट उठाया और सावधान चित्तसे व्याख्यान सु की कृपा की, इसके लिये मैं आप सब महाशयों को धन्यवाद दे अब विदाहोता हूँ ।

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ।

समाप्त ।